बाल-स्वास्थ्यरक्षा

वैद्यक शास्त्रानुसार नीरोग रहने के उपायों का
वर्णन।

लेखक
रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक
इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
१९२१

नवीन संस्करण] [मूल्य ||=)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad

विषय-सूची

भूमिका

यह बात प्रसिद्ध है कि जिसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, जिसकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहती, उसका जीना बेकार हो जाता है । कारण यह कि अस्वस्थ मनुष्य सांसारिक या पारमार्थिक कोई काम नहीं कर सकता। उसको और तो क्या, अपना शरीर सँभालना ही दुष्कर हो जाता है। इसी लिए हमारे पूर्वज आचार्यों ने बतलाया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों साधनो का मुख्य कारण आरोग्य है । यदि नीरोगता है तो ये चारों काम सिद्ध हो सकते हैं और यह नहीं तो कुछ नहीं ।

प्रत्यक्ष देखने में आता है कि आजकल भारतवासी सौ मे निन्यानवे रोगी रहते हैं, या यों कहिए कि सौ मे एक भारतवासी कुछ स्वस्थ रहता है। कुछ हम इसलिए कहते हैं कि वह भी पूरा स्वस्थ नहीं रहता । थोड़ा बहुत स्वास्थ्य उसका भी बिगड़ा ही रहता है। सारांश यह निकला कि आजकल भारतवासियों का स्वास्थ्य बिलकुल ठीक नहीं । क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध किसी को देखिए और किसी के स्वास्थ्य पर ध्यान दीजिए तो यही मालूम होगा कि किसी की कमर में दर्द है तो किसी के पेट में गड़बड़ है । कोई दस्त न होने की शिकायत करता सुनाई

देगा ते कोई दस्त ज्यादा होने की। कोई बेहद मोटा दिख
देगा ते कोई अस्थिपंजरमात्र। मतलब यह कि प्रत्येक मनु
किसी न किसी रोग से आक्रान्त जरूर मिलेगा।

अब सोचना यह है कि इसका कारण क्या है? एकद
सारे भारतवासियों का स्वास्थ्य क्यो विगड गया? भारतवास
सबके सब एकदम निर्बल, रोगी, निष्पुरुपार्थ, नि साहस और
हीनकाय क्यों हो गये और होते जाते हैं? विचार करने से पत
लगता है कि भारतवासी सदा से ऐसे ही नहीं थे जैसे कि अब
हैं। इतिहास देखने से पता लगता है कि पहले और अब के
भारतवासियो में बहुत बडा अन्तर पड गया है। पहले लोग ऐसे
नीरोग, हृष्ट-पुष्ट और दीर्घकाय तथा बलिष्ठ होते थे कि अब
उनके शतांश भी नहीं होते। उनकी शूरवीरता और पराक्रम के
कामो को सुनकर आज सारी दुनिया दंग हो रही है। भारत-
वासियो का मन ते यहाँ तक निर्बल हो गया है कि प्राचीन सच्चो
ऐतिहासिक घटनाओं पर विश्वास करने को भी उनका जी नहीं
चाहता। चाहे कैसे? हम लोग स्वय इतने निर्बल, निस्तेज और
निस्साहस हो गये हैं कि अपनी आँखो देखे कामो में भी पूरा
पूरा विश्वास नहीं करते।

पाण्डवचरित और रामचरित के देखने से मालूम होता है
कि पहले हमारे पुरखा बडे ही नीरोग और बलवान् होते थे।
कारण इसका यही था कि वे स्वास्थ्यरक्षा पर विशेष ध्यान देते
थे। हम लोग इस पर कुछ ध्यान नहीं देते। पहले प्रत्येक मनुष्य

वैद्यकशास्त्र के मर्मों को समझता था। आज-कल सौ में क्या हज़ार में भी एक आदमी ऐसा नहीं दिखाई देता जो आयुर्वेद को पढ़ कर वैद्यकशिक्षा से अपनी स्वस्थता पर पूरा विचार करता हो।

जब तक भारतवासी वैद्यकशास्त्र की शिक्षा के अनुसार अपने स्वास्थ्य के सुधार के लिए प्रयत्न न करेंगे तब तक वे कभी नीरोग, हृष्ट-पुष्ट, बलवान् और साहसी नहीं बन सकते। नीरोग रहने के लिए प्रत्येक मनुष्य को वैद्यक-शास्त्र का जानना बड़ा ज़रूरी है। जब तक स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का थोड़ा बहुत ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को नहीं होगा तब तक कोई नीरोग नहीं रह सकता।

हमारे वैद्यक-शास्त्रों में हमारे देश, काल और प्रकृति के अनुसार स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का वर्णन किया गया है। पर हम उन शास्त्रों को उठाकर देखते ही नहीं। देखें कहाँ से, उन शास्त्रों को पढ़ने और समझने के लिए हमें संस्कृत भाषा ज़रूर जाननी चाहिए। संस्कृत यहाँवाले पढ़ते नहीं, वह ठहरी बेचारी 'मुर्दा ज़बान'। भला ज़िन्दा आदमी मुर्दों की ज़बान कैसे पढ़ें।

पाठक! क्या तुम्हारे बड़ों की ज़बान 'मुर्दा' है! क्या रामचन्द्र, युधिष्ठिर की भाषा भी मुर्दा हो सकती है? कभी नहीं। मुर्दा हैं वे भारतवासी जो अपनी भाषा को मुर्दा कहते हैं। भाषा मुर्दा नहीं है, भारतवासी ही मुर्दा हैं। भारतवासी मुर्दा न होते तो क्या स्वार्थ-सुधार के लिए भी संस्कृतभाषा न पढ़ते?

आज-कल हमारी मातृभाषा हिन्दी है। जब तक हिन्दी उपयोगी ग्रन्थो की भग्मार न होगी तब तक हिन्दीभाषाभाषि को पूरा लाभ न होगा। जब तक प्रत्येक विषय पर हिन्दीभा में पुस्तकें न लिखी जायँगी तब तक हिन्दी-साहित्य-भण्डार क पूर्ण नहीं हो सकता।

हिन्दी में वैद्यकशास्त्र का प्राय अभाव देख कर ही हम इस 'बाल-स्वास्थ्यरक्षा' नामक पुस्तक की रचना की है। इस सरल हिन्दी भाषा मे स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का वर्णन विस्ता पूर्वक किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि किन किन उपा से, किन किन साधनो से हम नीरोग रह सकते हैं। बात य कि रोगो से बचने के लिए जिन जिन बातों के जानने की अधि आवश्यकता है वे सब बातें इस 'बाल-स्वास्थ्यरक्षा' में रक्खी ग हैं। हर एक हिन्दी जाननेवाले के घर में "बाल-स्वास्थ्यरक्षा ज़रूर रहनी चाहिए। बालको को यह पुस्तक जरूर पढा चाहिए, जिससे वे अपनी स्वास्थ्यरक्षा के उपायो को अच्छ तरह पढ कर समझ सकें और तदनुसार अनुष्ठान कर सकें इसकी भाषा यथासम्भव हमने सरलही रक्खी है। इसलिए या पुस्तक क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध—सभी काम की है।

यह बाल-स्वास्थ्यरक्षा बालसखा-पुस्तकमाला की १५ व पुस्तक है। इसमें बहुत करके यह बतलाया गया है कि मनुष्य को रोगो से दूर रहने के लिए किन किन बातो की आवश्यकत

है। नीरोग रहने के साधनो का इसमें अच्छा वर्णन किया गया है।

आशा है, पाठक अन्यान्य पुस्तकों की तरह इस अत्युपयोगी पुस्तक को भी पढकर इससे लाभ उठावेंगे।

वैशाख कृष्ण ३०
संवत् १९९६ वि०

रामजीलाल शर्म्मा

आज-कल हमारी मातृभाषा हिन्दी है। जब तक हिन्दी में उपयोगी ग्रन्थो की भरमार न होगी तब तक हिन्दीभाषाभाषियों को पूरा लाभ न होगा। जब तक प्रत्येक विषय पर हिन्दीभाषा में पुस्तकें न लिखी जायँगी तब तक हिन्दी-साहित्य-भण्डार कभी पूर्ण नहीं हो सकता।

हिन्दी में वैद्यकशास्त्र का प्राय अभाव देख कर ही हमने इस 'बाल-स्वास्थ्यरक्षा' नामक पुस्तक की रचना की है। इसमें सरल हिन्दी भाषा मे स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का वर्णन विस्तार-पूर्वक किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि किन किन उपायों से, किन किन साधनो से हम नीरोग रह सकते हैं। बात यह कि रोगो से बचने के लिए जिन जिन बातों के जानने की अधिक आवश्यकता है वे सब बातें इस 'बाल-स्वास्थ्यरक्षा' में रक्खी गई हैं। हर एक हिन्दी जाननेवाले के घर मे "बाल-स्वास्थ्यरक्षा" जरूर रहनी चाहिए। बालको को यह पुस्तक जरूर पढ़ानी चाहिए, जिससे वे अपनी स्वास्थ्यरक्षा के उपायों को अच्छी तरह पढ कर समझ सकें और तदनुसार अनुष्ठान कर सकें। इसकी भाषा यथासम्भव हमने सरलही रक्खी है। इसलिए यह पुस्तक क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध—सभी के काम की है।

यह बाल-स्वास्थ्यरक्षा बालसखा-पुस्तकमाला की १५ वां पुस्तक है। इसमे बहुत करके यह बतलाया गया है कि मनुष्य को रोगो से दूर रहने के लिए किन किन बातो की आवश्यकता

है। नीरोग रहने के साधनों का इसमें अच्छा वर्णन किया गया है।

आशा है, पाठक अन्यान्य पुस्तकों की तरह इस अत्युपयोगी पुस्तक को भी पढ़कर इससे लाभ उठावेंगे।

वैशाख कृष्ण ३०
संवत् १९९६ वि०

रामजीलाल शर्म्मा

बाल-स्वास्थ्यरक्षा

स्वास्थ्यरक्षा की आवश्यकता।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम्"।

हमारे धर्मशास्त्रो मे लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो साधनो की जड शरीर की नीरोगता है। मतलब यह कि बिना नीरोग शरीर के प्राणी न धर्म कमा सकता है न अर्थ, न काम सिद्ध कर सकता है और न मोक्ष के लिए कुछ उपाय कर सकता है। सार यह निकला कि शरीर के नीरोग रहने पर ही मनुष्य कुछ काम कर सकता है, अन्यथा नहीं।

चाहे मनुष्य कितना ही धर्मात्मा हो, कितना ही धनी हो, पर जब उसके शरीर में किसी प्रकार की अस्वस्थता हो जाती है, किसी प्रकार का रोग लग जाता है तब वह सब काम-धन्धे भूल जाता है। जब किसी के शरीर मे थोडी सी भी पीडा होती है तब वह कितना बेचैन रहा करता है, यह किसी से छिपा नहीं है। क्योंकि कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे कभी न कभी किसी प्रकार का रोग न हुआ हो। और, आज-कल तो रोगो की इतनी भरमार हो रही है कि जिसका

कुछ ठिकाना ही नहीं । दिन दिन नये नये रोग फैलते जाते हैं ।

रोगी मनुष्य कुछ काम नहीं कर सकता । वह न अपना ही कुछ काम कर सकता है और न दूसरे का ही । उसका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिए । जब शरीर भी धारण किया और उससे कुछ काम न लिया गया तब एक प्रकार से उस शरीर को व्यर्थ ही समझना चाहिए । रोगी मनुष्य का जीवन व्यर्थ ही भाररूप हो जाता है ।

इन सब बातों के विचार करने से यह सार निकला कि स्वास्थ्यरक्षा की बड़ी आवश्यकता है । यदि मनुष्य के लिए सबसे बड़ी और सबसे पहले किसी बात की आवश्यकता है तो स्वास्थ्य-रक्षा की । यदि मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म करना चाहता है तो उसे सबसे पहले स्वास्थ्य-सुधार का प्रयत्न करना चाहिए, अपनी तन्दुरुस्ती सुधारनी चाहिए ।

अब हम यह बतलावेंगे कि स्वास्थ्यरक्षा किस प्रकार हो सकती है, हम अपने शरीर को किस प्रकार नीरोग रख सकते हैं । और, यह भी हम यहाँ बतलावेंगे कि वे उपाय हम कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं । हमारे देश में स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का वर्णन कभी किसी ने किया है या नहीं —इस बात का विचार भी हम यहाँ करेंगे ।

यह तो प्रत्येक आस्तिक भारतवासी अच्छी तरह जानता

और मानता ही है कि परम पिता परमात्मा ने संसार मात्र के उपकार के लिए सब सत्य विद्याओं का भण्डार वेद प्रकाशित किया है। यह दूसरी बात है कि हम अल्प विद्या-बुद्धिवाले मनुष्य उन सारी विद्याओं का ज्ञान नहीं रखते, या हमें वे सब विद्यायें वेद में नहीं दिखाई पड़तीं। किन्तु अपनी अज्ञानता से यदि कोई यह समझ ले कि वेद में विद्यायें हैं ही नहीं, उसमें हमारे काम की सब विद्यायें हो ही नहीं सकतीं, तो उनका ऐसा समझना भारी भूल है। बात यह है कि जब तक मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके वेदादि सत्य-शास्त्रों का पठन, मनन और निदिध्यासन नहीं करता, तब तक उसे मालूम ही नहीं हो सकता कि वेदों में क्या है वेदों के महत्त्व-ज्ञान के लिए, उनका तत्त्व समझने के लिए, लोगों को ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके संस्कृत विद्या का पूरा पूरा अभ्यास करना चाहिए। ए, बी, सी, डी, या अलिफ, बे, पे, पढ़ने मात्र से वैदिक तत्त्वों का बोध नहीं हो सकता। जो लोग अपने प्राचीन वेदों के मर्म्म जाननेवाले प्राचीन ऋषिमुनियों का निरादर करके विदेशियों के अध-कचरे विचारों के पिछलगू हो रहे हैं वे पवित्र वेदों की पावन शिक्षा का कभी अनुभव नहीं कर सकते।

अच्छा अब असली मतलब पर आइए। वेद में स्वास्थ्यरक्षा की आवश्यकता और उसके उपायों का बीज मात्र देख कर हमारे प्राचीन वैदिक ऋषियों ने संसार के उपकार के लिए—

आयुर्वेद

शास्त्र की रचना की । आयुर्वेद का अर्थ है—आयु का ज्ञान, या आयु का लाभ । आयुर्वेद में विस्तारपूर्वक इस बात का वर्णन किया गया है कि मनुष्य किस प्रकार नीरोग रह सकता है और रोगी हो जाने पर किस प्रकार रोग दूर कर सकता है। आयुर्वेद में क्या नहीं है जो हम इस बात के लिए भी पराधीन होते जाते हैं ? उसमे नीरोग रहने के वे सरल और सुगम उपाय बतलाये हैं, खाने पीने के पदार्थों के वे गुण अव-गुण बतलाये हैं और रहन-सहन का वह अच्छा ढग बतलाया है जिनके अनुसार चलने से मनुष्य कभी रोगी नहीं हो सकता। यही नहीं, उसमे रोगों के पैदा होने का कारण, निदान और उनके दूर होने के ऐसे सुगम उपाय बतलाये हैं कि जिनसे ससार को बडा लाभ पहुँचा है, पहुँच रहा है और पहुँचेगा ।

ऐसे अच्छे जीवनमूल आयुर्वेद के बनानेवाले ऋषियो का सारा ससार ऋणी है । और सबसे अधिक उनका ऋणी य भारतवर्ष है कि जहाँ उत्पन्न होकर उन्होंने ऐसा उत्तम शास रचकर इस देश की प्रतिष्ठा बढाई ।

पुराने इतिहास की खोज करनेवाले विद्वानों ने निर्ण कर दिया है कि भारतवर्ष का आयुर्वेद बडा प्राचीन है । इस देश के आयुर्वेद से दूसरे देशवालों ने यह विद्या सीखी । इस विषय के आन्दोलनो का विस्तारपूर्वक वर्णन हम इस छोटे सं पुस्तक में नहीं कर सकते ।

जिन ऋषियों ने संसार के उपकार के लिए आयुर्वेद का निर्माण किया उनके प्रति हमारा कर्तव्य है कि हम—

आयुर्वेद की महिमा

का विस्तार सारे संसार में कर दें। कैसे खेद की बात है कि विदेशी लोग तो हमारे आयुर्वेद से मनमाना लाभ उठावें और हम आँख खोले देखते रहें। आज विदेशी तो आयुर्वेद के पारगामी बन जायँ और हम, जिनको इस बात का घमंड है कि आयुर्वेद का निर्माण प्रथम हमारे ही पूर्वजों ने किया है, इससे कोरे ही रह जायँ। क्या यह कम लज्जा की बात है?

जिस आयुर्वेद की शिक्षा से हमारे देश में श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जी, युवराज अङ्गद, राजा रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण, अर्जुन, कर्ण, भीमसेन और परशुराम जैसे महाबली, दृढाङ्ग, नीरोग और सारी पृथ्वी को कँपानेवाले शूरवीर पैदा हो गये हैं उसकी महिमा के जानने के लिए हमको उद्योग करना चाहिए। हमारे महाभारत आदि ग्रन्थों में इस शास्त्र की महिमा के अनेक उदाहरण लिखे पड़े हैं।

हाँ, लीजिए, पुरानी बातों को भी जाने दीजिए। आज-कल श्रीयुत राममूर्ति नायडू का प्रत्यक्ष दृष्टान्त आपके सामने है। क्या श्रीयुत राममूर्ति का एक एक काम आयुर्वेद की महिमा का जीता जागता उदाहरण नहीं है? तीस तीस चालीस चालीस मन का भारी पत्थर छाती पर रखना और उस पर रक्खे हुए

वर को धन दन्ड्रा कर तुड़वाना, दारह बारह घोड़ों के
वाली चलती मोटरगाड़ी को कमर में रस्सी बाँध कर रोक
ना, बीस-तीस आदमियों से भरी गाड़ी के पहिये को छाती
मे उतार देना और पचासों आदमियों के बल लगाने पर भी
टूटनेवाली लोहे की जंजीर को कड़ाके से तोड़ डालना
आदि अद्भुत काम इस बात को स्पष्ट बतला रहे हैं कि
आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार चलने से मनुष्य कैसा हो सकता है।
से खेद की बात है कि ऐसे प्रत्यक्ष दृष्टान्तों को देख कर भी
न आँखे नहीं खोलते, तो भी हम अपने आयुर्वेद की प्रतिष्ठा
हीं करते। जब तक हम अपने आप अपनी प्रतिष्ठा करना न
खेंगे, जब तक हम अपने ऋषि मुनियों की आज्ञा का पालन
करेंगे तब तक हमारी भी कोई प्रतिष्ठा नहीं कर सकता और
तक हम सदा इसी तरह नीच समझे जायँगे जैसे आज-
ल समझे जाते हैं। अपने प्राचीन शास्त्रों को पढ कर हमको
नसे लाभ उठाना चाहिए और संसार को दिखा देना चाहिए
... हमारे यहाँ किसी ज्ञान की कमी नहीं है। ... अपने देश का

चूंट सभी को इसका ज्ञान होना उचित है । इसके न जानने से आज हमारा शरीर रोगों का भंडार हो रहा है । आज हम यह भी नहीं जानते कि हमारी प्रकृति या स्वभाव कैसा है, हमको क्या खाना चाहिए और क्या नहीं । जब तक मनुष्य वैद्यक-विद्या के तत्त्वों को अच्छी तरह नहीं समझता, चाहे वह वकील हो या बारिस्टर, शास्त्री हो या आचार्य्य, राजा हो या महाराजा, और चाहे कोई क्यों न हो, तब तक वह कभी सुखी नहीं रह सकता । कभी नीरोग नहीं रह सकता । इसलिए इस शास्त्र का जानना सभी के लिए उपयोगी है ।

वैद्यक-विद्या के प्रचार का उपाय

अब तक के कथन से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य को स्वास्थ्यरक्षा की बड़ी आवश्यकता है और उस स्वास्थ्यरक्षा के उपाय आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखे हुए हैं । मतलब यह है कि स्वास्थ्यरक्षा के उपाय जानने के लिए वैद्यकशास्त्र के जानने की आवश्यकता है । हमारे देश में प्राचीन समय में कितने ही आयुर्वेद जाननेवाले ऋषि ऐसे हो गये हैं जिन्होंने आयुर्वेद का मथन कर अनेक रत्न निकाले हैं, जो उन्हीं के या उनके शिष्यों द्वारा निर्म्मित ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक लिखे हुए हैं। वैद्यक के चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि प्राचीन ग्रन्थों के पढ़ने से मालूम होता है कि हमारे ऋषियों ने वैद्यक-विद्या में बड़ा परिश्रम किया है । उन्होंने बहुत काल तक अनुभव

पत्थर को घन बजवा कर तुडवाना, बारह बारह घोडो के बलवाली चलती मोटरगाडी को कमर मे रस्सी बाँध कर रोक लेना, बीस-तीस आदमियो से भरी गाडी के पहिये को छाती पर से उतार देना और पचासो आदमियों के बल लगाने पर भी न टूटनेवाली लोहे की जजीर को कडाक से तोड डालना इत्यादि अद्भुत काम इस बात को स्पष्ट बतला रहे हैं कि आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार चलने से मनुष्य कैसा हो सकता है। कैसे खेद की बात है कि ऐसे प्रत्यक्ष दृष्टान्तो को देख कर भी हम आँखें नहीं खोलते, तो भी हम अपने आयुर्वेद की प्रतिष्ठा नहीं करते। जब तक हम अपने आप अपनी प्रतिष्ठा करना न सीखेंगे, जब तक हम अपने ऋषि मुनियो की आज्ञा का पालन न करेंगे तब तक हमारी भी कोई प्रतिष्ठा नहीं कर सकता और तब तक हम सदा इसी तरह नीच समझे जायँगे जैसे आज-कल समझे जाते हैं। अपने प्राचीन शास्त्रों को पढ कर हमको उनसे लाभ उठाना चाहिए और ससार को दिखा देना चाहिए कि हमारे यहाँ किसी बात की कमी नहीं है। अपने देश का गौरव बढाना या घटाना अपने हाथ मे है। इसके लिए हम पराधीन नहीं हैं। इसलिए प्रत्येक समझदार भारतवासी को उचित है कि वह आयुर्वेद को पढे, तदनुसार औषधो का बनाना सीखे, और उनसे रोगो की चिकित्सा करे।

आयुर्वेद सभी के काम की विद्या है। इससे सबको लाभ पहुँचता है। इसलिए, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या

की भाषा संस्कृत ही थी, इसलिए वैद्यक-शास्त्र भी उसी पवित्र देव-वाणी में लिखे गये जिसमें परमात्मा ने वेदों का प्रकाश किया था।

जब तक हमारे देश में संस्कृत विद्या का अधिक प्रचार रहा, जब तक हमारे देश के स्त्री-पुरुष संस्कृत सीखना अपना कर्तव्य समझते रहे—तभी तक वैद्यक-शास्त्र का भी अधिक प्रचार रहा। पहले लोग वैद्यक शास्त्रों के उपदेशों को पढ सुन कर उनके अनुसार चलते थे, और इसी लिए वे महाबली, नीरोग और हृष्ट-पुष्ट होते थे। पर जब से हमारे दौर्भाग्य से इस देश में संस्कृत-विद्या का प्रचार कम होने लगा तभी से भारतवासी ऐसी उपयोगी विद्या के ज्ञान से कोरे हो गये। जब से वैद्यक-विद्या की यहाँ कमी हुई तभी से लोगों का स्वास्थ्य अधिक बिगडने लगा, तभी से नाना-प्रकार के नये नये रोग पैदा होने लगे, तभी से ब्रह्मचर्यव्रत के माहात्म्य को भूल कर लोग पतले, दुबले, सदा रोगी, निर्बुद्धि, साहसहीन और डरपोक होने लगे, तभी से वैद्यक-शास्त्र की शिक्षा के विरुद्ध बालकपन में ही लडके लडकियों का ब्याह करके उनके जीवन को लोग नष्ट करने लगे। कहाँ तक कहे, वैद्यक-शास्त्र का निरादर करके हमारे देश ने बडी हानि उठाई है, और अभी तक बराबर उठा रहा है, और न जाने और कब तक इसी तरह अज्ञान में फँसा रह कर आपत्ति भोगता रहेगा।

याद रखिए, जब तक हम संस्कृत-विद्या का प्रचार सारे भारतवर्ष में फिर से न करेंगे तब तक भारतवासी इसी तरह रोगी, दुर्बल, पतले-दुबले और डरपोक ही बने रहेंगे। यदि

करके स्वास्थ्य की रक्षा के ऊपर बड़े गहरे, बड़े उपयोगी विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने मनुष्य की प्रकृति—स्वभाव—की पहचान बताकर यह निश्चय कर दिया है कि कैसी प्रकृतिवाले को कौन वस्तु लाभकारक है और कौन हानिकारक। भिन्न भिन्न प्रकृतिवालों को भिन्न भिन्न प्रकार के खाने-पीने, और रहन-सहन के ढङ्ग बतलाये हैं। यही नहीं, उन्होंने मनुष्यों के प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाले पदार्थों के गुण-अवगुण भी बतला दिये हैं। कौन वस्तु गरम है, कौन ठंडी इत्यादि बातों का वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थों में बड़े विस्तार से किया है। वैद्यकशास्त्र में उस शास्त्र के आचार्यों ने बतलाया है कि मनुष्य को क्या खाना चाहिए और कितना। कितना परिश्रम करना चाहिए और कितना सोना, किस वस्तु को किस वस्तु के साथ मिला कर खाना चाहिए और किसको किसके साथ नहीं, किस ऋतु में किस प्रकार का भोजन करना हितकर होता है और किस प्रकार का अहितकर, इत्यादि आवश्यक बातों का वर्णन, वैद्यकशास्त्र में, हमारे आचार्यों ने बड़ी उत्तमता से किया है। वैद्यकशास्त्र की शिक्षा के अनुसार आहार-व्यवहार करने से ही मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है, अन्यथा नहीं।

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि वे वैद्यक-शास्त्र किस भाषा में हैं। क्योंकि हमारे देश में पहले सदा और सब जगह संस्कृत-भाषा का ही प्रचार था। सब लोगों की बोल-चाल

यों तो स्वास्थ्यरक्षा के अनेक उपाय हैं, पर उनमें सबसे मुख्य चार उपाय हैं। वे ये हैं —

१ पवित्रता

२ ब्रह्मचर्य-व्रत

३ अनुकूल भोजन , और

४ व्यायाम

इन्हीं चारों बातों के होने से मनुष्य अपना स्वास्थ्य सुधार सकता है। ये चारों बातें जीवनरक्षा के लिए बड़ी आवश्यक हैं या यों कहना चाहिए कि इन चारों बातों पर पूरा ध्यान दियें बिना मनुष्य का जीवन रह ही नहीं सकता। इसलिए शरीर की रक्षा के लिए, रोगों से बचने के लिए और पूर्ण दीर्घायु, दृढाङ्ग, साहसी और बलवान् होने के लिए हर एक मनुष्य को इन चारों बातों का पालन करना चाहिए। जब तक मनुष्य इन चारों बातों का पालन नहीं करता तब तक कोई नीरोग और सुखी नहीं रह सकता।

अब हम इन बातों में से प्रत्येक बात की आवश्यकता, गुण और उपायों का वर्णन यहाँ करते हैं। इनमें सबसे पहली बात

पवित्रता

है। अब यह विचारना है कि हमें इसकी आवश्यकता है या नहीं ? और यदि है, तो कितनी ? और यह भी कि ...न किस प्रकार कर सकते हैं ?

भारतवर्ष में श्रीरामचन्द्र, अर्जुन, भीमसेन और परशुराम जैसे दीर्घायु, पराक्रमी, निडर, और महाबली वीर पैदा करने की इच्छा हो तो संस्कृत-विद्या का प्रचार करना चाहिए, जिससे सब लोग वैद्यक-विद्या को पढ़ कर लाभ उठा सकें।

आज-कल हम देखते हैं, संस्कृत का प्रचार बहुत ही कम है। परन्तु जब तक संस्कृत का पूरा प्रचार न हो तब तक क्या करना चाहिए? क्या तब तक वैद्यक-विद्या का किसी प्रकार प्रचार हो ही नहीं सकता? नहीं, अवश्य हो सकता है। जब तक लोग संस्कृत सीखें तब तक हिन्दी-भाषा में ही वैद्यक-विद्या का प्रचार करना चाहिए। आज-कल हिन्दी-भाषा की उन्नति की ओर लोगों का ध्यान भी है। इसलिए हमें चाहिए कि अभी हिन्दी-भाषा में ही ऐसे ऐसे ग्रन्थ लिखे, छपावे जिनसे सर्वसाधारण को वैद्यक-शिक्षा का लाभ हो। अतएव संस्कृत जाननेवाले हिन्दी-लेखकों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे वैद्यक-विद्या के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का हिन्दी-भाषा में सरल अनुवाद करना आरम्भ कर दें।

इसी अभिप्राय से हमने यह 'बाल-स्वास्थ्यरक्षा" नामक पुस्तक लिखना आरम्भ किया है जिससे हिन्दी पढ़े लिखे लोग भी स्वास्थ्यरक्षा के उपायों को जान सकें।

अब हम यहाँ स्वास्थ्यरक्षा के सरल और सुगम उपायों का कुछ वर्णन करते हैं।

यों तो स्वास्थ्यरक्षा के अनेक उपाय हैं, पर उनमें सबसे मुख्य चार उपाय हैं। वे ये हैं —

१ पवित्रता

२ ब्रह्मचर्य्य-व्रत

३ अनुकूल भोजन , और

४ व्यायाम

इन्हीं चारों बातों के होने से मनुष्य अपना स्वास्थ्य सुधार सकता है। ये चारों बातें जीवनरक्षा के लिए बड़ी आवश्यक हैं या यों कहना चाहिए कि इन चारों बातों पर पूरा ध्यान दिये बिना मनुष्य का जीवन रह ही नहीं सकता। इसलिए शरीर की रक्षा के लिए, रोगों से बचने के लिए और पूर्ण दीर्घायु, दृढाङ्ग, साहसी और बलवान् होने के लिए हर एक मनुष्य को इन चारों बातों का पालन करना चाहिए। जब तक मनुष्य इन चारों बातों का पालन नहीं करता तब तक कोई नीरोग और सुखी नहीं रह सकता।

अब हम इन बातों में से प्रत्येक बात की आवश्यकता, गुण और उपायों का वर्णन यहाँ करते हैं। इनमें सबसे पहली बात

पवित्रता

है। अब यह विचारना है कि हमें इसकी आवश्यकता है या नहीं? और यदि है, तो कितनी? और यह भी कि हम पवित्रता का सम्पादन किस प्रकार कर सकते हैं?

पवित्रता का मतलब शुद्धि या सफाई से है। जो मनु पवित्र नहीं रहता वह सदा रोगी बना रहता है। अपवित्र रह से सबसे पहले वायु बिगड़ जाता है। वायु के बिगड़ने से अने रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिए हमें सबसे पहले पवित्र हो का प्रयत्न करना चाहिए।

अच्छा तो अब देखना चाहिए कि हम किस प्रकार पवित्र हो सकते हैं? हमारी पवित्रता के क्या साधन हैं? हमारी पवित्रता के साधन छः हैं —

(१) घर
(२) शरीर
(३) भोजन
(४) वस्त्र
(५) जल, और
(६) वायु

इन छहों की शुद्धि हमारी पवित्रता का आधार है। इन्हीं के शुद्ध होने पर हम पवित्र या शुद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। क्या देशी, क्या विदेशी, सभी वैद्यक-विद्या-विशारदों का मत है कि जब तक इन ऊपर लिखी बातों की शुद्धि नहीं की जाती तब तक मनुष्य कभी पवित्र नहीं रह सकता। और जब तक पवित्र न हो तब तक मनुष्य कभी नीरोग, पूर्णायु और बलिष्ठ नहीं हो सकता। इसलिए हर एक समझदार मनुष्य को इनकी शुद्धि पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

गृह-शुद्धि

पवित्र होने के लिए सबसे पहले घर की शुद्धि करनी चाहिए। मनुष्य दिन रात घर में ही रहता है, घर मे ही खाता है, घर मे ही पीता है, घर मे ही सोता है, घर मे ही रहता सहता है, और सारे काम घर में ही रह कर करता है। इसलिए घर की शुद्धि की बडी आवश्यकता है। यदि घर शुद्ध नहीं है, साफ नहीं है, तो उस घर की सब चीजें अशुद्ध हैं। जब घर का कुल सामान अशुद्ध है तब वहाँ का वायु अवश्य बिगड जाता है। वायु बिगडने से जल भी बिगड जाता है, और जहाँ जल-वायु बिगडे वहाँ झट रोग पैदा हो जाते हैं। अशुद्ध घर मे रहने से ऐसी ऐसी जानलेवा बीमारियाँ मनुष्य के पीछे पड जाती हैं कि फिर उनसे जान बचाना बडा कठिन है। इसलिए नीरोगता चाहनेवाले को पहले घर की सफाई करनी चाहिए।

(१) घर ऐसा होना चाहिए जिसमे धूप, हवा और रोशनी अच्छी तरह आती हो। जिस घर में धूप, हवा और रोशनी नहीं आती वह बडा भयानक है। उसे रोगों का घर समझना चाहिए। जिस घर मे सील अधिक होती है उसके रहनेवाले प्राय बीमार पडे रहते हैं। मकान में सील न रहने देनी चाहिए। और, वह सील धूप के लगने से बडी आसानी से दूर हो सकती है। या तो आग जला कर उस सील को दूर कर सकते हैं या धूप लगा कर। पर, आग जलाने में मिहनत और खर्च अधिक

पवित्रता का मतलब शुद्धि या सफाई से है। जो मनुष्य पवित्र नहीं रहता वह सदा रोगी बना रहता है। अपवित्र रहने से सबसे पहले वायु बिगड जाता है। वायु के बिगडने से अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिए हमे सबसे पहले पवित्र होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अच्छा तो अब देखना चाहिए कि हम किस प्रकार पवित्र हो सकते हैं? हमारी पवित्रता के क्या साधन हैं? हमारी पवित्रता के साधन छः हैं —

(१) घर
(२) शरीर
(३) भोजन
(४) वस्त्र
(५) जल, और
(६) वायु

इन छहो की शुद्धि हमारी पवित्रता का आधार है। इन्हीं के शुद्ध होने पर हम पवित्र या शुद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। क्या देशी, क्या विदेशी, सभी वैद्यक-विद्या-विशारदों का मत है कि जब तक इन ऊपर लिखी बातो की शुद्धि नहीं की जाती तब तक मनुष्य कभी पवित्र नहीं रह सकता। और जब तक पवित्र न हो तब तक मनुष्य कभी नीरोग, पूर्णायु और बलिष्ठ नहीं हो सकता। इसलिए हर एक समझदार मनुष्य को इनकी शुद्धि पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

जाते हैं। उनका वायु बिगड़ जाता है। इसलिए दर्वाजा खूब लंबा चौड़ा होना चाहिए।

(६) घर के आस पास भी खूब सफाई रहनी चाहिए। जिस घर के द्वार पर कूड़ा पड़ा रहता है उस घर का वायु भी साफ नहीं रह सकता। इसलिए कूड़ा घर के पास नहीं, दूर फेंकना चाहिए।

(७) घर के भीतर पायखाना बनवाना अच्छा नहीं। पायखाना पास होने से भी घर में बदबू फैलने से वायु बिगड़ जाता है। इसलिए जहाँ तक हो पायखाना घर से दूर ही होना चाहिए। और यदि घर में ही पायखाना बनवाना चाहे तो घर की दक्षिण दिशा की ओर बनवाना चाहिए। क्योंकि दक्षिणी वायु बहुत ही कम चला करता है। पूर्वी और पश्चिमी वायु ही अधिकता से चला करता है। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने श्मशान की जगह दक्षिण दिशा में होने के लिए लिखा है। जब पायखाना दक्षिण दिशा में बनाया गया तो घर का मुँह पूर्व दिशा की या पश्चिम दिशा की ओर होना चाहिए। दक्षिण की ओर मकान का मुँह रखने के लिए, इसी कारण, हमारे पुराने वास्तु-विद्याविशारदों ने निषेध किया है। इसलिए दक्षिण दिशा की ओर मकान का दर्वाजा नहीं होना चाहिए।

(८) पायखाना फिर चुकने के बाद उसे मिट्टी से ढक देना चाहिए। ऐसा करने से उसकी बदबू सब जगह नहीं फैलने पाती, दब जाती है। क्योंकि गन्ध पृथिवी का

होता है, और धूप लगाने में हमारी कौड़ी भी नहीं लगती। इसलिए मकान ऐसा होना चाहिए जिसमें धूप आ सके। क्योंकि धूप के लगने से सील मे पैदा हुए कीड़े मर जाते हैं।

(२) घर के भीतर जितने छोटे बड़े कोठे कोठरियाँ हों वे भी सब ऐसे होने चाहिएँ जिनमें हवा और रोशनी अच्छी तरह आ जा सके।

(३) घर के किसी कोने में या छप्पर में कहीं जाले वाले न लगे रहें।

(४) घर को साल में दो बार नहीं तो कम से कम एक बार तो अवश्य ही साफ करा कर पुतवा देना चाहिए। घर को रोज दो तीन बार बुहारना चाहिए और चौथे पाँचवे दिन, यदि कच्चा फ़र्श हो तो गोबर से लीपना चाहिए और जो पक्का हो तो पानी से ही धो डालना चाहिए।

(५) घर मे जितने दर्वाजें हों वे सब ख़ूब लंबे चौड़े होने चाहिएँ। उनकी चौखटें इतनी ऊँची हों कि लंबे से लंबे आदमी के सिर से हाथ भर जगह और खाली बचनी चाहिए। वे दर्वाजे किसी काम के नहीं कि जिनमें दस बरस का बालक भी झुक कर आय। तंग दर्वाजों से एक बड़ी बुराई यह होती है कि उसके भीतर रोशनी नहीं जाने पाती। और जिसमे रोशनी अच्छी तरह नहीं जाती और दिन में भी दिया जलाने की ज़रूरत होती है वह स्थान स्वास्थ्य ठीक रखनेवालों के रहने योग्य नहीं है। ऐसे मकान में रहनेवालो को अनेक रोग हो

बन्द हो जाते हैं। हवा बाहर न निकलने से शरीर के भीतर की गर्मी या खराब हवा भीतर ही रुक जाती है। वह गर्मी या हवा भीतर रुक कर अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बन जाती है। उसके रुकने से ज्वर सा चढ आता है और एक प्रकार की गर्मी सी मालूम होने लगती है। दिमाग को बहुत नुकसान पहुँचता है। इसलिए रोज नहाना चाहिए जिससे रोमों के मुँह खुले रहें और भीतरी हवा या गर्मी पसीने के रूप में होकर बाहर निकलती रहे।

नहाने का मतलब बस यही न होना चाहिए कि एक दो लोटे पानी डाला और झगडा खोया। नहीं, उसके लिए पानी अधिक होना चाहिए। नहाते समय आँख, कान, नाक आदि अङ्गों की खूब सफाई करनी चाहिए। हजामत सप्ताह में दो बार, नहीं तो कम से कम एक बार तो जरूर बनवानी चाहिए। नख भी जल्द जल्द कटवाते रहना चाहिए। केशों और नखों के बढने से भी स्वास्थ्य विगड जाता है। इसके सिवा सोकर उठने के बाद सवेरे ठीक समय पर पाखाना जाना चाहिए। जो लोग ऐसा नहीं करते, आठ आठ नौ नौ बजे तक शौच नहीं जाते, उनका स्वास्थ्य बिगड जाता है। क्योंकि रुका हुआ मल गर्मी पैदा करता है और वायु को बिगाड कर अनेक रोगों को पैदा कर देता है। दन्त-धावन और जिह्वाशोधन भी शारीरिक शुद्धि के भीतर आ जाते हैं। किसी मञ्जन से या दँतवन से दाँतों का मैल साफ कर डालना चाहिए। मञ्जन से

गुण है इसलिए वह हर एक वस्तु की गन्ध को ग्रहण करने की शक्ति रखती है । इसी कारण जहाँ से बदबू उठती हो वहाँ मिट्टी डाल दीजिए तो बदबू वहीं दब जाती है । बात यह कि वह मिट्टी उस बदबू को सोख लेती है । जैसे ब्लाटिंग पेपर (स्याही-सोखता कागज) गीली स्याही को रखते ही सोख लेता है उसी तरह मिट्टी बदबू को सोख जाती है ।

इसके सिवा और भी जिस रीति से घर की सफाई हो उस रीति को काम में लाना चाहिए । मतलब यह कि जैसे बने घर को खूब साफ रखना चाहिए ।

शरीर-शुद्धि

घर की शुद्धि के बाद शरीर की शुद्धि का नंबर है । शरीर नहाने धोने से शुद्ध हो जाता है, अर्थात् पानी से शरीर की सफाई होती है । इसलिए सबको प्रतिदिन जरूर नहाना चाहिए । नहाने से देह का मैल धुल जाता है । जो लोग रोज नहाते रहते हैं वे बहुत कम बीमार पड़ते हैं । रोज नहाने से त्वचा के ऊपर रोमाञ्चों का मैल दूर हो जाता है । शरीर पर त्वचा में बहुत छोटे छोटे छिद्र होते हैं । इन्हीं सूराखों में होकर पसीना बाहर निकला करता है । नहाने से उनके ऊपर का मल दूर हो कर उनके भीतर से हवा का आना जाना बराबर जारी रहता है । पर, जो कई कई दिन तक नहीं नहाते उनके रोमाञ्चों के मुँह मैल से

रहने से लाभ भी होता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि बिना विचारे, हर हालत मे, ऐसा करना ही चाहिए। यही दशा हमारे भोजन-विचार की है। हम भोजन के विचार मे इतने डूब गये हैं कि उसका असली मतलब हमारे हाथ से निकल गया। हम सखरी-निखरी के मिथ्या विचार मे इतने लीन हो गये हैं कि जिससे हमारा वास्तविक सिद्धान्त बहुत दूर जा पड़ा है। हम असली मार्ग से दूर जा पड़े। बहुत से लोग सखरी-निखरी के विचार को ही भोजन शुद्धि मानने लगे। जो सबसे अधिक छुआछूत का विचार करे वही आचारी माना जाने लगेगा।

एक ही हलवाई की दूकान पर दो तरह की मिठाई रक्खी है। एक वह जो खोवे और मीठे से, अर्थात् बिना अन्न की बनी हुई है और दूसरी अन्न की बनी हुई, जैसे मोतीचूर के लड्डू, जलेबी, बालूशाही आदि। पर हमारे 'आचारीजी' एक को निखरी समझते हैं और दूसरी को सखरी। उनके विचार में लड्डू-जलेबी सखरी हैं और पेड़ा, कलाकन्द निखरी। इसलिए वे एकादशी के व्रत का माहात्म्य बढाने के लिए, दूकान से पेडा बर्फी ले जाकर नारायण को भोग लगाते और व्रत सफल करते हैं।

क्यों आचारीजी! दाल-रोटी, पूरी पकवान और जलेबी आदि मिठाई तो आपकी समदृष्टि से सब बराबर ही हैं ये सब तो आपके विचार में सखरी हैं ही। रोटी या पूरी का तनिक सा टुकड़ा आपकी पूजा में कहाँ से आ पड़े तो आप छूत मानते हैं। और समझना चाहिए कि आपके विचार मे सचमुच पूजा

सिर्फ दाँत ही साफ़ हो सकते हैं, जीभ नहीं। पर, दँतवन से जीभ की भी सफाई हो सकती है। कूची सी बना कर दाँतों को साफ कर चुकने के बाद उसको बीच में से चीर कर दो लवे भाग कर लेने चाहिएँ। उनको मोड़ कर धीरे धीरे जीभ का मैल दूर करना चाहिए।

भोजन-शुद्धि

यहाँ तक घर और शरीर की शुद्धि का वर्णन हो चुका। अब भोजन की शुद्धि का वर्णन करते हैं। भोजन की शुद्धि पवित्रता का तीसरा अङ्ग है। मुख्य करके भोजन पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य और बल निर्भर है। भोजन के अनुसार ही शरीर का गठन होता और बल बढ़ता है। इसलिए भोजन की शुद्धि पर विचार करना भी बड़ा आवश्यक है। भोजन की शुद्धि के विषय में जानने योग्य दो चार बातें यहाँ पर लिखते हैं।

भोजन की शुद्धि के विषय मे भारतवासियों का बड़ा अद्भुत विचार है। खाने पीने का जितना विचार भारतवासी हिन्दू करते हैं उतना शायद ही कोई और करता हो। पर किसी किसी काम में "अति" करना भी हानिकारक हो जाता है। सब लोग जानते हैं कि नहाने से देह की शुद्धि होती है। पर, यदि इसी सिद्धान्त को लेकर कोई घंटों, भैंस की तरह, पानी में लोटता रहे तो उसको लाभ के बदले हानि ही होगी। यह माना कि किसी किसी रोग में बहुत देर तक पानी मे पड़े

रहने से लाभ भी होता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि विना विचारे, हर हालत मे, ऐसा करना ही चाहिए। यही दशा हमारे भोजन-विचार की है। हम भोजन के विचार मे इतने डूब गये हैं कि उसका असली मतलब हमारे हाथ से निकल गया। हम सखरी-निखरी के मिथ्या विचार में इतने लीन हो गये हैं कि जिससे हमारा वास्तविक सिद्धान्त बहुत दूर जा पड़ा है। हम असली मार्ग से दूर जा पड़े। बहुत से लोग सखरी-निखरी के विचार को ही भोजन शुद्धि मानने लगे। जो सबसे अधिक छुआछूत का विचार करे वही आचारी माना जाने लगेगा।

एक ही हलवाई की दूकान पर दो तरह की मिठाई रक्खी है। एक वह जो खोवे और मीठे से, अर्थात् विना अन्न की बनी हुई है और दूसरी अन्न की बनी हुई, जैसे मोतीचूर के लड्डू, जलेबी, बालूशाही आदि। पर हमारे 'आचारीजी' एक को निखरी समझते हैं और दूसरी को सखरी। उनके विचार में लड्डू-जलेबी सखरी हैं और पेडा, कलाकन्द निखरी। इसलिए वे एकादशी के व्रत का माहात्म्य बढाने के लिए, दूकान से पेडा बर्फी ले जाकर नारायण को भोग लगाते और व्रत सफल करते हैं।

क्यों आचारीजी! दाल-रोटी, पूरी-पकवान और जलेबी आदि मिठाई तो आपकी समदृष्टि से सब बराबर ही हैं ये सब तो आपके विचार में सखरी हैं ही। रोटी या पूरी का तनिक सा टुकड़ा आपकी पूजा में कहीं से आ पडे तो आप छूत मानते हैं। और समझना चाहिए कि आपके विचार से सचमुच पूजा

सखरी हो ही गई फिर भला आपका यह विचार हलवाई की मिठाई लेते समय कहाँ उड़ जाता है ? एक ही दूकान, एक ही बेचनेवाला, एक ही तराज़ू पास ही पास थाल से थाल सटे रक्खे हुए मिठाई के, पर तो भी उसी हाथ से उठाई हुई, और उसी तराज़ू पर तोली हुई आपकी मिठाई निखरी ही बनी रही ? उसमे बिलकुल सखरी हवा तक नहीं लगी ? वाह रे निखरापन ! क्या इसी का नाम सखरी निखरी है ? क्या इसी लिए आपको 'आचारीजी' की उपाधि मिली है ? आचारीजी, जरा विचार कर देखिए तो आपकी मिठाई भी निखरी नहीं रही, सखरं हो गई। सखरी मिठाई का कितना ही अंश हलवाई के हाथे से और तराज़ू से छूट छूट कर आपकी निखरी में आ मिला आपके ही विचार से उसको खा कर आपका व्रत भंग हो गया ! और हाँ ऐसी सखरी मिठाई का भोग लगा कर आपने अपने नारायण का भी तो धर्म बिगाड दिया ! "आप डुबन्ते बामना, ले डूबे जजमान" !

आपकी पूरियों का कटोरदान जूते पहने हुए नाई के सिर पर रक्खा हुआ भौले दूर तो चला जाय पर जब आप उसे खाने के लिए खोलने बैठेंगे तब चौका लगा कर और बदन पर से सब कपडे उतार कर बैठेंगे। क्यों साहब आपके ही कपडों में जहर है जिसका, पूरियों पर उड कर लग जाने का डर है ? क्या चमार-मेहतरो की अजामत बनानेवाले नाई के कपडे आपके

कपड़ा से भी पवित्र है? धन्य हैं आप और आपकी बुद्धि। बलिहारी इस निखरपन की!!!

बालको, इस तरह के सखरे-निखरेपन की अन्ध-परम्परा से भोजन की शुद्धि नहीं होती। इसे भोजन की शुद्धि नहीं कहते। अब हम वैद्यक-शास्त्र के मतानुसार भोजन की शुद्धि का विचार करते हैं।

भोजन की शुद्धि के लिए सबसे पहले यह देखना चाहिए कि जिस वस्तु की तरकारी दाल बनी है और जिस अन्न के आटे का भोजन बनाया जाता है वह चीज साफ थी या नहीं? अन्न घुना तो नहीं था? खत्ती का निकला सड़ा हुआ तो नहीं था? उसमें मिट्टी ककर तो नहीं थे? यदि भोजन की सारी चीजें खूब सफाई के साथ, देख भाल कर, बनाई गई हैं तो भोजन शुद्ध समझना चाहिए। और यदि सफाई के साथ भोजन नहीं बना, गेहूँ और दाल के मिट्टी ककर साफ नहीं किये गये तो उसका बना भोजन कभी शुद्ध नहीं हो सकता। ऐसा भोजन अशुद्ध होता है और यही अशुद्ध भोजन पेट में जाकर अनेक रोग पैदा कर देता है। यदि आटा साफ नहीं है, उसमें मिट्टी और ककर भी पिस कर मिले हुए हैं तो उसके खाने से कुछ दिन में पेट में कीड़े पड़ जाते हैं, पाण्डु रोग हो जाता है आँखें और सारा शरीर पीला पड़ जाता है, अग्नि मद हो जाता है और शरीर दिन दिन दुबला होता चला जाता है। इस कारण, स्वास्थ्यरक्षा के लिए हमारा

वैद्यक-शास्त्र बतलाता है कि भोजन की शुद्धि खूब सोच-समझ कर करनी चाहिए। भोजन की हर एक चीज खूब साफ कर डालनी चाहिए। न जाने उसमें कौन सी जहरीली और रोग पैदा करनेवाली चीज मिली हुई हो।

दूसरे, भोजन की शुद्धि के लिए इस बात की बड़ी जरूरत है कि रसोई बनानेवाला साफ रहता हो। यदि रसोइया शुद्ध नहीं है तो आप चाहे जितना आटा, दाल साफ कीजिए, सब व्यर्थ है। इसलिए रसोई बनानेवाला शुद्ध और नीरोग होना चाहिए। उसके शरीर में कोई ऐसा रोग नहीं होना चाहिए जिसका असर भोजन में लग जाय। नहीं तो रसोइये की बीमारी खानेवाले पर कुछ न कुछ असर डाल ही देगी। रसोइये के शरीर में घाव नहीं होने चाहिएँ, उसे खाँसी की भी शिकायत न हो। दाद, खाज, कुष्ठ और ऐसी ही उड़ कर लगनेवाली और भी कोई बीमारी उसे न हो। ऐसी ऐसी जरूरी बातों का विचार भोजन की शुद्धि के लिए बड़ा जरूरी है। सखरी-निखरी का झूठा, बनावटी, दिखलावा और धर्मध्वजीपन का व्यर्थ आडम्बर रखनेवालों को वैद्यक-शास्त्र के शिक्षानुसार भोजन की वास्तविक शुद्धि का भी अवश्य विचार करना चाहिए।

वस्त्र-शुद्धि

यहाँ तक भोजन-शुद्धि का विचार हुआ। यह पवित्रता का

ा अङ्ग था। अब पवित्रता के चौथे अङ्ग—वस्त्र-शुद्धि अर्थात्
ा की सफाई—का विचार किया जाता है। जैसे मनुष्य की
्यरक्षा के लिए घर, शरीर और भोजन की शुद्धि की
श्यकता है वैसे ही कपड़ों की सफाई की भी बड़ी जरूरत है।
शरीर और भोजन की सफाई करने पर भी यदि कपड़े मैले
ुदार ही रहे तो शुद्धि कुछ भी नहीं हुई। इसलिए हर एक
कदार आदमी को चाहिए कि कपड़ों की सफाई पर भी पूरा
न रक्खे। जो लोग अपने पहनने ओढ़ने के कपड़ों की
ई का अच्छी तरह ध्यान नहीं रखते यदि उनका स्वास्थ्य
ड़ जाय तो आश्चर्य ही क्या? अशुद्ध या मैले कपड़ेवालों
स्वास्थ्य न बिगड़े तो और किनका बिगड़े? उनका तो
ड़ना ही चाहिए। जो लोग अपना स्वास्थ्य ठीक रखना
ें उन्हें अपने वस्त्रों की शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिए।
चाहे सूती हो या ऊनी, पर होना चाहिए साफ। मैले
ड़ों में पसीना और भाप आदि के लगने से बड़ी बुरी दुर्गन्धि
या करती है। वही दुर्गन्धि वायु को बिगाड़ देती है। वही
न्धि हवा में मिल कर श्वास के साथ भीतर जाती है और
ँ जाकर कितने ही रोगों को पैदा कर देती है। इसके सिवा
' और बदबूदार कपड़ेवाले का स्वय अपना जी भी मलिन,
ास और खराब रहा करता है और दूसरे लोग भी उसे पास
ाने में नाक भौं सिकोड़ा करते हैं। इसलिए कपड़े सदा स्वच्छ,
मैल और शुद्ध ही रखने चाहिएँ। कपड़ा चाहे जैसा मैला या

सकता । खराब पानी बहुत ही हानि करता है । कितने ही रोग तो खराब पानी पीने से ही हो जाया करते हैं । इसी लिए पानी साफ और शुद्ध ही पीना चाहिए ।

शुद्ध पानी कितने ही रोगों को दूर करता है । जैसे—मूर्च्छा, दाह, प्यास, वमन, श्रम, अरुचि, पसीना, आलस्य मदात्यय (अधिक नशा करना), आम, अरुचि और पाण्डु रोग आदि । इसी तरह अशुद्ध पानी अनेक रोगों को पैदा करता है । पानी के सम्बन्ध मे जानने योग्य दो चार बातें यहाँ लिखते हैं ।

(१) पानी उस आदमी के हाथ से नहीं पीना चाहिए जो ऐसा रोगी हो कि उसका बुरा असर उस पानी मे चले जाने की शङ्का हो । जैसे—कुष्ठी, श्वासी, क्षयी और गरमी की बीमारीवाला । ऐसे रोगियो के शरीर से वायु के साथ निकले हुए विषैले परमाणु पानी में चले जाते हैं और वह पानी के साथ पीनेवाले के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोग पैदा कर देते हैं ।

(२) दूसरे पानी सदा कपड़े से छान कर ही पीना चाहिए । इसके लिए वैद्यक-शास्त्र ही नहीं, हमारा धर्म-शास्त्र भी आज्ञा देता है । भगवान् मनु की आज्ञा है कि "वस्त्रपूत पिबेज्जलम्" अर्थात् 'वस्त्र द्वारा पवित्र करके जल पीना चाहिए ।' यह क्यो ? आप जानते हैं, धर्म-शास्त्र और वैद्यक-शास्त्र के सिद्धान्त का यह मिलान क्यों हुआ ? बात यह है कि जहाँ अधर्म होने की

शङ्का होती है, जिस काम में यह डर रहता है कि ऐसा करने से अधर्म हो जायगा, वहाँ धर्मशासक अपने धर्म-ग्रन्थों में उनके विरुद्ध झट आज्ञा दे देते हैं कि यह काम इस प्रकार करना चाहिए। पानी में छोटे छोटे कीड़े या सूक्ष्म परमाणु होते हैं जो पानी से बिना छाने नहीं निकल सकते। इसी लिए कि उन जीवों की हिंसा न हो, "अहिंसा परमो धर्म" के उपासकों ने पानी को छान कर पीने की आज्ञा दी है। परन्तु वैद्यक-शास्त्र ने इसलिए जल की शुद्धि पर अधिक ध्यान दिया है कि अशुद्ध, अस्वच्छ और अपवित्र पानी स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। इन बातों के देखने से मालूम होता है कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने हमारे धर्म की रक्षा और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए पानी की शुद्धि के लिए आज्ञा दी है। यदि हम अपने पूर्वजों के इस उपयोगी आदेश को नहीं मानते, उसके अनुसार नहीं चलते, तो अस्वस्थ होने के सिवा हम बड़ों की आज्ञाभङ्ग-रूप पाप के भी भागी होते हैं। ऐसा काम करने के लिए, जिसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों बनते हैं, कौन बुद्धिमान् तैयार न होगा?

किस मनुष्य को कब, कैसा और कितना पानी पीना चाहिए—इस बात का वर्णन हम यहाँ नहीं करते। इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन कहीं अन्यत्र करेंगे। यहाँ तो हम केवल यही बतलाना चाहते हैं कि जल साफ ही पीना चाहिए।

(३) जिस कुए का पानी पीने के काम में आता हो उस कुए को साल भर में कम से कम एक बार अवश्य शुद्ध करा

देना चाहिए। उसका सब पानी निकलवा कर उसकी मिट्टी आदि सब साफ करा देनी चाहिए। ऐसा करने से साफ कुए का पानी भी साफ़ होगा। जिस तरह आप पानी रखने का बर्तन. जिसमें पानी रक्खा रहता है या पिया जाता है, खूब साफ रखते हैं इसी तरह कुए को भी पानी का एक बडा बर्तन समझना चाहिए। उस बर्तन की सफाई के लिए भी खूब ध्यान रखना चाहिए। जो कुआ हर साल साफ नहीं किया जाता उसका पानी खराब हो जाता है। जो लोग उसका पानी पीते हैं वे प्राय अस्वस्थ रहा करते हैं। इसलिए कुए की सफाई से भी पानी की सफाई होती है।

यहाँ तक घर, शरीर, भोजन, वस्त्र और जल की शुद्धि पर विचार किया जा चुका। पवित्रता के पाँच अङ्ग तो हो चुके। अब छठे अङ्ग 'वायु-शुद्धि' पर विचार करते हैं।

वायु-शुद्धि

जिस तरह हमारे जीवन के लिए अन्न और जल की आवश्यकता है उसी तरह, बल्कि उससे भी जियादा जरूरत हमें हवा की है। अन्न के बिना मनुष्य कई दिन जीता रह सकता है और पानी के बिना भी दो चार घडी जी सकता है, परन्तु वायु के बिना दो चार पल भी नहीं जी सकता। सच पूछिए तो वायु ही वास्तव में हमारा जीवन है। वायु ही इस सारे ब्रह्माण्ड को थाम रहा है और सब प्राणियो के बाहर और भीतर रह कर

उन्हें जीवित रख रहा है। गर्मियों में या जब कभी वायु की गति बहुत मन्द पड़ जाती है तब, लोगों के प्राणों को बन जाती है। सब को साँस लेना भारी हो जाता है। इन सब बातों के सोचने से पता लगता है कि वायु हमारे लिए कितनी जरूरी चीज है। यह वायु जब खराब हो जाता है तब अनेक रोगों को पैदा कर देता है। जितने रोग वायु से पैदा होते हैं उतने और किसी से नहीं होते। और, वायु के रोग कठिन भी सबसे अधिक होते हैं। वैद्यक-शास्त्र ने इस वायु की महिमा सबसे अधिक गाई है। उसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। यहाँ तो सिर्फ यही लिखना चाहते हैं कि हवा हमारे लिए कितनी जरूरी है और उसकी शुद्धि की कितनी जरूरत है।

बिगड़ी हुई हवा सैकड़ों बीमारियों को पैदा कर देती है। इसलिए वायु शुद्धि पर हमें सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। जिस हवा में हम जीते हैं, साँस लेते हैं, उसका साफ होना बड़ा जरूरी है। उसकी शुद्धि के लिए हमारे पूर्वज ऋषियों ने एक बहुत ही आसान और बढ़िया उपाय बतलाया है कि हर एक मनुष्य को अपने अपने घर में सुगन्धित पदार्थों को अग्नि में डालकर अग्नि-होत्र करना चाहिए। हमारे दैनिक पाँच कामों में हवन करना भी एक जरूरी काम बतलाया गया है। बात यह है कि स्वास्थ्य-रक्षा पर पहले लोगों ने बड़ा ही गहरा विचार किया था। वे जानते थे कि स्वास्थ्य किस प्रकार ठीक रह सकता है। वे स्वास्थ्यरक्षा के उपायों को बराबर काम में लाते थे—इसके सैकड़ों प्रमाण

हमारे पुराने संस्कृत-साहित्य में पाये जाते हैं। पहले घर घर नित्य साधारण हवन हुआ करते थे और अमावास्या तथा पौर्णमासी के दिन कुछ विशेष रूप से। यही नहीं, भारत-वर्ष मे पहले जगह जगह कितने ही ऐसे बड़े बड़े यज्ञ हुआ करते थे जो महीनों और वर्षों होते रहते थे। उस समय वायु शुद्ध रहता था। इसी लिए पहले लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहता था। पहले लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट, दीर्घकाय, नीरोग और बलशाली हुआ करते थे। पर, जब से इस देश से हवन की प्रथा उठ गई, वायु की शुद्धि का लोगो ने ध्यान छोड़ दिया, तब से नीरोगता और पुष्टि आदि सब गुण न जाने कहाँ हवा हो गये। तभी से, वायु के बिगड़ जाने से, लोग इतने रोगी रहने लगे कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। इसलिए हमे उचित है कि हम अपने जीवन के लिए, अपनी स्वास्थ्यरक्षा के लिए, वायु की शुद्धि का उपाय करें। और, वह उपाय एक-मात्र हवन करना है।

इस प्रकार घर, शरीर, भोजन, वस्त्र, जल और वायु की शुद्धि करने से मनुष्य पवित्र हो सकता है। इन्हीं की शुद्धि का नाम पवित्रता है। इसी पवित्रता की रक्षा से हम सदा नीरोग बने रहते हैं और इसी की विशेष रक्षा से हम अपनी स्वास्थ्यरक्षा कर सकते हैं। मनुष्य को अपनी स्वास्थ्यरक्षा के लिए इस पवित्रता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

हम पहले लिख चुके हैं कि मनुष्य की स्वास्थ्यरक्षा के मुख्य चार साधन हैं। पवित्रता, ब्रह्मचर्य्यव्रत, अनुकूल भोजन और

व्यायाम। इनमें पहले उपाय—पवित्रता—का वर्णन हो चुका। अब स्वास्थ्यरक्षा के दूसरे मुख्य उपाय

ब्रह्मचर्य-व्रत

का वर्णन करते हैं। ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करना भी बड़ा जरूरी है। जिस तरह घर का आधार नींव पर होता है, इसी तरह शरीररूपी घर का आधार ब्रह्मचर्य्य-व्रत पर है। जिस तरह नींव कची होने से मकान भी कचा ही रहता है—बहुत दिन तक नहीं बना रहता, इसी तरह ब्रह्मचर्य्य-व्रत के भङ्ग से यह मनुष्य-शरीर कचा रह जाता है अर्थात् अधिक दिन तक नहीं रहने पाता, बीच में ही नष्ट हो जाता है। जिस तरह कची नींव का घर साधारण ही आपत्तियों से गिर पड़ता है और उसमें रहनेवाले अकाल में ही काल के ग्रास बन जाते हैं इसी तरह ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पूरा पालन किये बिना कोई मनुष्य नीरोगता, सुख और पूर्ण आयु नहीं भोग सकता। इसलिए मनुष्य को, अपने शरीर की रक्षा के लिए, और पूर्ण आयु के सुख भोगने के लिए, ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए।

जो बालक ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करते हैं वे ब्रह्मचारी कहलाते हैं। समय के फेर से, विद्या के न होने से और मूर्खों के सङ्ग में रहने से लोग ब्रह्मचारी का मतलब आज-कल कुछ और ही करने लगे हैं। कितने ही नासमझ आज-कल ब्रह्मचारी उसे कहते हैं जो विद्याहीन, निरुद्यमी, निर्बुद्धि, निर्बल, भिखारी और अनेक बुराइयों में फँसा हो। आज कल कितने ही ऐसे नाम के

ब्रह्मचारी हैं जो एक अक्षर नहीं पढ़े, जिनका शरीर दुबला है और जो निरुद्यमी हैं।

हम यहाँ इस छोटी सी पोथी में ब्रह्मचर्य्य का पूरा वर्णन नहीं कर सकते। परन्तु इतना जरूर बतलावेंगे कि ब्रह्मचर्य्य क्या है ? उसके पालन से क्या लाभ है और उसका पालन किस तरह किया जा सकता है ? जब तक इस देश में ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन होता रहा तब तक इस देश की कैसी दशा थी और जब से इसका प्रचार बन्द हुआ तब से इसकी कैसी दुर्दशा हो गई ? हम इन सब बातों का बहुत थोड़े में वर्णन करेंगे।

हमारे देश के पुराने आचार्यों ने मनुष्य की पूरी सौ वर्ष की आयु के बराबर बराबर चार भाग किये थे। हर एक भाग पच्चीस पचीस वर्ष का था। उन भागों को आश्रम कहते हैं। उन चारों के नाम इस प्रकार हैं—**ब्रह्मचर्य** आश्रम, **गृहस्थ** आश्रम, **वानप्रस्थ** आश्रम, **संन्यास** आश्रम। इनमें से हम प्रसंग-वश पहले आश्रम ब्रह्मचर्य्य का ही कुछ वर्णन यहाँ करेंगे।

ब्रह्मचर्य्य आश्रम सब आश्रमों की जड़ है। यदि ब्रह्मचर्य्य ठीक ठीक निभ गया तो और आश्रम भी निभ सकते हैं, नहीं तो एक भी आश्रम नहीं निभ सकता।

पांच या आठ वर्ष की अवस्था से पचीस वर्ष की अवस्था तक गुरुकुल में बस कर वेदादि सत्यशास्त्रों को पढ़ना और पढ़ते समय सांसारिक झगड़ों से अलग रहना ब्रह्मचर्य्य-व्रत कहलाता है। ब्रह्मचर्य-व्रत को पूरा करके अर्थात् २५ वर्ष तक विद्या पढ़ कर

बाद में गृहस्थ आश्रम में भरती होना चाहिए। मतलब यह कि जब तक विद्या पढ़ कर ब्रह्मचारी युवा न हो जाय तब तक विवाह नहीं करना चाहिए।

जब इस देश में यह प्रथा जारी थी, ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा थी, लोग इसका पालन करना अपना काम समझते थे तब यह देश कैसा सुखमय था, कैसा प्रतिष्ठित था और कैसा उन्नत था—इस बात को देखना हो तो अपना पुराना इतिहास देखिए। महाभारत और वाल्मीकि-रामायण आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ उठा कर देखिए। उनके देखने से आपको पता लगेगा कि पहले यह देश सारे भूमण्डल में कैसा विख्यात था। पहले यहाँ के निवासी सारे देशों के गुरु माने जाते थे। यहाँ के शूरवीरों की वीरता सुन कर दूसरे देशवाले थर थर काँपते थे। श्रीरामचन्द्रजी, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, महाबली अर्जुन, बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह आदि महात्माओं ने यहाँ पैदा होकर इस देश की कितनी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। इन्होंने अपने बाहुबल से क्या नहीं कर दिखाया? इनके नाम को सुन कर बड़े बड़े अभिमानी वीरों के हाथ से, मारे डर के, शस्त्र नीचे गिर पड़ते थे। इन धर्मात्मा शूर-वीरों ने कितने ही दुराचारी राजाओं की जड़ तक उखाड़ कर फेंक दी। परन्तु सोचिए तो यह सब क्यों था? पहले लोग ऐसे निडर, महाबली और साहसी क्योंकर होते थे? खोज करने से मालूम होता है कि उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत का बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया था। इसी ब्रह्मचर्य के

प्रभाव से उन्होंने ऐसे ऐसे कठिन काम कर डाले कि जिन्हें सुन कर, आज हमारी दुर्बल और सकुचित बुद्धि, उन पर विश्वास करने के लिए भी तैयार नहीं होती। यह सब समय का फेर है। जो देश कभी सारी विद्याओं का घर था, शूर-वीरों की खान था वही आज दूसरों का मुँह ताक रहा है। और तो क्या, आज उसे पेट भर अन्न भी नसीब नहीं होता।

जब से इस देश से ब्रह्मचर्य-व्रत उठा तभी से इसकी अधोगति आरम्भ हुई। आज-कल जैसी भयानक दशा है, उसके सोचते ही रोमांच हो जाता है, शोकसागर मे गोते लगाने पडते हैं। आज ब्रह्मचर्य-व्रत का खण्डन करके, बचपन मे ही बालकों का ब्याह करके, यह देश कितना नीचे गिर गया है, कितना पतित हो गया है और कैसा निर्बल, निर्विय और निरुद्यम हो गया है कि जिसके सोचने-मात्र से आँखों से आँसुओं की धारा जारी हो जाती है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा से बुद्धि बढती है, बल बढता है, साहस बढता है और दिमागी ताकत बढती है। जिसके भग करने से ये सारी बाते हवा हो जाती हैं। जिनका ब्याह बचपन में ही हो जाता है वे न तो पूरी विद्या पढ पाते हैं और न उनका शरीर ही बलवान् रहता है। ब्रह्मचर्य-खण्डन करनेवालों के शरीर में अनेक रोग आकर अपना डेरा सदा के

लिए जमा लेते हैं। पहले तो उसके कोई सन्तान होती ही नहीं, और जो हो भी जाती है तो वह न होनेके ही बराबर है। क्योंकि जैसा बीज होता है वैसाही पौदा उगता है। इसलिए जैसा हीन-बुद्धि, क्षीण काय और निर्बल पिता है वैसी ही, बल्कि उससे गई बीती उसकी सन्तति होती है।

इसलिए, अपनी स्वास्थ्यरक्षा के लिए, शरीर को नीरोग और हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए, और अपनी सन्तान को भीम और अर्जुन के समान महाबली और पराक्रमी बनाने के लिए ब्रह्मचर्य की रक्षा करने की बड़ी आवश्यकता है। जब तक हम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना न सीखेंगे तब तक हम कभी अपना स्वास्थ्य ठीक नहीं रख सकते। ब्रह्मचर्य का पालन करना यही है कि बालकपन में ब्याह न किया जाय किन्तु जब बालक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर चुके, सब विद्या पढ़ चुके, तब विवाह करना चाहिए।

यहाँ तक स्वास्थ्यरक्षा के दो मुख्य उपायों—पवित्रता का और ब्रह्मचर्य व्रत—का वर्णन हो चुका। अब तीसरे उपाय

अनुकूल भोजन

का वर्णन किया जाता है। अनुकूल भोजन भी स्वास्थ्यरक्षा का बड़ा उत्तम साधन है। अनुकूल भोजन का मतलब है—प्रकृति के मुआफिक भोजन करना। मतलब यह निकला कि ऐसा भोजन करे जिससे मनुष्य को कोई विकार न हो।

यह देखा जाता है कि मनुष्य को जितने रोग होते हैं वे प्राय भोजन की गडबड से ही होते हैं। जो मनुष्य भोजन के विषय में अत्यन्त सावधानी नहीं करते वे प्राय रोगी हो जाते हैं। पवित्रता के वर्णन मे हम लिख चुके हैं कि भोजन की शुद्धि पर विशेष विचार रखना चाहिए। तदनुसार पहली बात तो भोजन की शुद्धि है। दूसरी यह कि भोजन बासी, सडा घुसा, रूखा, सूखा, और किसी प्रकार से विकृत न होना चाहिए। बासी भोजन वायु को बिगाडता और देर मे पचता है। सडा घुसा भी अनेक रोग पैदा करता है तथा रूखा सूखा भोजन देर मे पचने के सिवा पेट मे शूल पैदा करता है। इसलिए विचारशील मनुष्य को उचित है कि सडा घुसा, बासी कूसी, रूखा सूखा भोजन कभी न करे। ऐसा विकारमय भोजन हर एक मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध होता है। इसलिए यह प्रतिकूल भोजन सर्वथ त्याज्य है। इससे सबको बचना ही चाहिए। तीसरी बात अनुकूल भोजन के लिए यह विचारनी चाहिए कि जो भोजन किया जाता है वह कैसा है अर्थात् उसका गुण क्या है ? जिसका गुण अपने स्वभाव से मिल जाय, जो अपने शरीर को हानिकारक न हो, वही भोजन उत्तम है और वही अनुकूल कहाता है। कल्पना कीजिए कि आपकी प्रकृति पित्त की, गरमी की है, तो आपको पित्त बढानेवाली या पित्त को बिगाडनेवाली चीजें न खानी चाहिएँ। पित्त का विरोधी अर्थात् उसको बिगाडनेवाला खट्टा-रस है। खटाई से पित्त बढ जाता है इसलिए पित्त प्रकृतिवाले को

खट्टी चीजें अधिक न खानी चाहिएँ। इसी तरह और प्रकृतियों का हाल है।

अनुकूल भोजन के साथ यह विचार करना भी बड़ा जरूरी है कि भोजन समय पर किया जाय। जो लोग समय पर भोजन करते हैं वे नीरोग रहते हैं। विपरीत इसके, जो लोग समय का ध्यान नहीं रखते, जब जी में आया तभी खाने लगते हैं, वे प्राय बीमार रहा करते हैं। इसलिए, स्वास्थ्य के सुधार के लिए समय पर भोजन करने की बडी आवश्यकता है। जो लोग भूख लगने से पहले भोजन कर लेते हैं उनका जठराग्नि निर्बल पड जाता है और अन्न देरी से पचा करता है तथा उनके पेट मे आम बढ जाता है, जिससे अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। और, जो लोग भूखे रहते हैं, भूख लगने पर भी भोजन देरी से करते हैं, उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। भूख मारने से शरीर दुबला हो जाता है। जब पेट के अग्नि को कुछ काम नहीं रहता अर्थात् उसके पास पचाने के लिए भोजन नहीं रक्खा जाता तब वह भीतर का खून सुखाने लगता है। भूखे आदमी के पेट मे जो गरमी सी हुआ करती है वह पेट की आग की ही जलन होती है, और कुछ नहीं। उसकी गरमी से भीतर का लोहू और मांस जलने लगता है। इसी तरह लोहू मास जलते जलते मनुष्य का शरीर बडा दुबला-पतला हो जाता है। अतएव हमारे आयुर्वेद के ज्ञाता ऋषि महात्मा कहते हैं कि मनुष्य को कभी भूखा न रहना चाहिए और न कभी बिना भूख कुछ खाना चाहिए। जो लोग

बहुत कम होता है । उसकी हड्डियाँ इतनी कमजोर होती हैं
जहाँ जरा सी भी चोट लगी कि बस टूट गई । उसका श
आलस्य की पोटली हो जाती है । फुर्ती तो वह जानता ही न
कि किसे कहते हैं । चलते समय पैर ऐसे धीरे धीरे उठता है
मानो मन मन भर के हैं । काम के लिए कहो तो हाथ भी दे
से उठता है । कहाँ तक कहे, व्यायाम न करनेवाले का शरी
ऐसा निर्बल, कोमल और आलसी हो जाता है कि उससे को
काम नहीं बन सकता । इसके सिवा उसका भोजन भी ठी
समय पर नहीं पचा करता । जब भोजन ही ठीक ठीक न
पचता तो फिर बल कहाँ से आवे ? बल तो बढ़ता है खाने
पर खाना ठीक पचता नहीं । इसलिए शरीर निर्बल होना
चाहिए । व्यायाम न करनेवाले का जठराग्नि मन्द और निर्बल
जाता है । इसलिए उसका शरीर रोगों का भंडार हो जाता है

मनुष्य को अपनी स्वास्थ्यरक्षा के लिए प्रतिदिन
बहुत व्यायाम जरूर करना चाहिए । सबको रोज कुछ न
ऐसा काम करना चाहिए कि जिसमें शरीर को खूब श्रम
पड़े । ऐसा श्रम कि जिससे सारा शरीर गरम हो जाय औ
पसीना निकलने लगे । यदि पसीना न निकले तो व्यायाम क्या
किया । इसलिए जब तक पसीना न निकले तब तक व्यायाम
करते ही रहना चाहिए । पसीना निकलने पर व्यायाम बंद क
देना चाहिए । बस यही इसकी मर्यादा है ।

व्यायाम करने से मनुष्य के शरीर में जैसा अद्भुत प

और पराक्रम आजाता है उसे सब कोई जानते हैं । इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण, हमारे सामने आज कल गुरुवर राममूर्ति मौजूद हैं । व्यायाम के प्रभाव से उनका शरीर कैसा बलशाली और तेजस्वी हो गया है । यह कह देना भी अत्युक्ति न होगी कि इस समय उनके समान बलवान्, सहनशील और पराक्रमी संसार भर में कोई नहीं ।

कैसे खेद की बात है कि ऐसे ऐसे दृष्टान्तों को प्रत्यक्ष देख कर भी हम व्यायाम की रीति से कुछ लाभ नहीं उठाते ।

बस स्वास्थ्यरक्षा के यही पाँच मुख्य उपाय हैं । इनका पालन करना, इनके अनुसार बर्ताव करना प्रत्येक स्वास्थ्यरक्षा चाहनेवाले का धर्म है । इन पाँचो उपायों को काम में लाने से मनुष्य नीरोग, हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, उद्यमी, साहसी और पराक्रमी हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

प्रकृतिविचार

चरक में लिखा है कि मनुष्यों की देह में वात, पित्त, कफ ये तीनो दोष सदा रहते हैं, चाहे ये विकारयुक्त हो या विकार-रहित । अब इन तीनो के अलग अलग कामों का वर्णन करते हैं ।

विकार-रहित वायु के काम

उत्साह का होना, श्वास लेना, छोड़ना, शरीर के अगों की चेष्टा (हरकत), धातु और मल, मूत्र का ठीक ठीक रीति से होना—ये सब काम विकार रहित वायु के हैं । मतलब यह कि जब शरीर में वायु ठीक ठीक रहता है, उसमें किसी तरह का

विकार नहीं होता उस समय मनुष्य के मन में उत्साह होता है, श्वास के लेने और छोड़ने में कोई गडबड नहीं होती, शरीर के सब अंग अपना अपना काम ठीक ठीक किये जाते हैं, और मल मूत्र आदि भी समय पर ठीक तरह होते रहते हैं। पर जब वायु विकृत हो जाता है, उसमें किसी तरह का बिगाड हो जाता है तब ये सब बातें उलटी हो जाती हैं। अर्थात् न उत्साह रहता है, न श्वास की गति ठीक रहती है, न हाथ पैर आदि अंग अपना काम ठीक करते हैं और न मल-मूत्रादि ही ठीक ठीक होते हैं।

विकार-रहित पित्त के काम

दृष्टि अर्थात् आँखों की ज्योति का ठीक रहना, पाचन शक्ति अर्थात् भोजन का ठीक तरह से पचना, देह में गर्मी का होना, भूख का लगना, प्यास का लगना, देह में कोमलता, कान्ति और प्रसन्नता का होना और बुद्धि का होना— ये सब काम विकार-रहित पित्त के हैं। पर जब पित्त बिगड़ जाता है तब ये सब बातें उलटी पड जाती हैं। अर्थात् पित्त के बिगड जाने से दृष्टि बिगड जाती है, भोजन ठीक समय पर नहीं पचता, भूख और प्यास में गडबड हो जाती है, देह में कोमलता, कान्ति और प्रसन्नता नहीं रहती, और बुद्धि भी बिगड जाती है।

विकार-रहित ... काम

देह की त्वचा में चिकनाई ... [illegible]

ठीक ठीक रहना, अंगों की स्थिरता, दृढ़ता, भारीपन, बल, क्षमा, धैर्य और निर्लोभता—ये सब काम विकार-रहित कफ के हैं। पर जब मनुष्य का कफ दूषित हो जाता है, बिगड़ जाता है, तब देह में चिकनाहट नहीं रहती, अंगों के जोड़ ढीले पड़ जाते हैं, शरीर में हलकापन आ जाता है और मजबूती जाती रहती है, बल, क्षमा, धैर्य और निर्लोभता जाती रहती है।

वात, पित्त और कफ के स्थान

शरी[illegible] किस अंग में कौन कौन दोष रहता है, इसका [illegible] रते हैं।

विकार नहीं होता उस समय मनुष्य के मन में उत्साह होता है, श्वास के लेने और छोडने में कोई गडबड नहीं होती, शरीर के सब अंग अपना अपना काम ठीक ठीक किये जाते हैं, और मल-मूत्र आदि भी समय पर ठीक तरह होते रहते हैं। पर जब वायु विकृत हो जाता है, उसमें किसी तरह का बिगाड हो जाता है तब ये सब बाते उलटी हो जाती हैं। अर्थात् न उत्साह रहता है, न श्वास की गति ठीक रहती है, न हाथ पैर आदि अंग अपना काम ठीक करते हैं और न मल-मूत्रादि ही ठीक ठीक होते हैं।

विकार-रहित पित्त के काम

दृष्टि अर्थात आँखो की ज्योति का ठीक रहना, पाचन-शक्ति अर्थात् भोजन का ठीक तरह से पचना, देह में गर्मी का होना, भूख का लगना, प्यास का लगना, देह में कोमलता, कान्ति और प्रसन्नता का होना और बुद्धि का होना—ये सब काम विकार-रहित पित्त के हैं। पर जब पित्त बिगड जाता है तब ये सब बातें उलटी पड जाती हैं। अर्थात् पित्त के बिगड जाने से दृष्टि बिगड जाती है, भोजन ठीक समय पर नहीं पचता, भूख और प्यास में गडबड हो जाती है, देह में कोमलता, कान्ति और प्रसन्नता नहीं रहती, और बुद्धि भी बिगड जाती है।

विकार-रहित कफ के काम

देह की त्वचा में चिकनाहट का होना, अंगो के जोडों का

ठीक ठीक रहना, अंगो की स्थिरता, दृढता, भारीपन, बल, क्षमा, धैर्य और निर्लोभता—ये सब काम विकार-रहित कफ के हैं। पर जब मनुष्य का कफ दूषित हो जाता है, बिगड जाता है, तब देह में चिकनाहट नहीं रहती, अंगो के जोड ढीले पड जाते हैं, शरीर में हलकापन आ जाता है और मजबूती जाती रहती है, बल, क्षमा, धैर्य और निर्लोभता जाती रहती है।

वात, पित्त और कफ के स्थान

शरीर के किस किस अंग मे कौन कौन दोष रहता है, इसका यहाँ वर्णन करते हैं।

वात का स्थान

वस्ति अर्थात् नाभि से कुछ नीचे, पक्वाशय अर्थात् जहाँ पेट मे पचा हुआ मल रहता है, कमर, सक्थिस्थान, पाँव और हड्डियाँ—बस इतनी जगह वात अर्थात वायु रहता है। इनमें भी विशेषकर पक्वाशय मे ही रहता है। अर्थात् पक्वाशय इसका मुख्य स्थान है।

पित्त का स्थान

इसी तरह पित्त के रहने की भी पाँच जगह हैं। पसीना, रस, त्वचा और मास के बीच का रस, रुधिर और आमाशय अर्थात् जहाँ भोजन किया हुआ कचा अन्न रहता है—इनमें आमाशय पित्त का प्रधान स्थान है।

कफ का स्थान

हृदय, सिर, कण्ठ, हड्डियों के जोड़, आमाशय और मेदधातु—ये कफ, के स्थान हैं। इनमें हृदय कफ का मुख्य स्थान है।

वात, पित्त, कफ सारे शरीर में विचरते रहते हैं। जब तक ये ठीक ठीक रहते हैं, अपनी अपनी जगह अपना अपना काम ठीक ठीक करते रहते हैं तब तक तो शरीर नीरोग रहता है और जब ये कुपित हो जाते हैं, बिगड़ जाते हैं तब अनेक प्रकार के रोग पैदा कर देते हैं।

वात के बिगाड़ से अस्सी तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं और पित्त से चालीस तरह की। इसी तरह कफ से बीस तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं।

प्रकृति की पहचान

किस मनुष्य की कैसी प्रकृति है—अर्थात् वात की है या पित्त की या कफ की? इस बात के समझने के लिए हम यहाँ पर विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

वात-प्रकृति की पहचान

जिस मनुष्य के केश छोटे हों, चित्त चपल हो, जो बहुत बोलनेवाला हो, जिसका शरीर रूखा हो अर्थात् त्वचा खुरदरी हो, देह पर चिकनाई न हो, शरीर दुबला हो, जो ऐसे स्वप्न देखे

कि जिनमें आकाश में आने जाने या उड़ने का काम पड़ [illegible] ऐसे लक्षणोंवाले मनुष्य की प्रकृति वात की समझनी चाहिए।

पित्त-प्रकृति की पहचान

जिस मनुष्य के केश जवानी में ही पक जायँ अर्थात् सफ़ेद हो जायँ, जिसकी बुद्धि तेज हो, जिसके शरीर से पसीना बहुत निकलता हो, जिसके स्वभाव में .गुस्सा ज़ियादा हो, [illegible] जिसको अग्नि या और वैसे ही चमकीले पदार्थ दिखाई दें [illegible] मनुष्य को पित्त की प्रकृतिवाला समझना चाहिए।

कफ-प्रकृति की पहचान

जिस मनुष्य की बुद्धि गम्भीर अर्थात् [illegible] [illegible] [illegible], केश चिकने हों, जो बलवान् हो, जिसको [illegible] [illegible]लाशय अधिक दिखाई दे, ऐसे मनुष्य को [illegible] [illegible] [illegible]मझना चाहिए।

वात-प्रकृति के ध्यान देने योग्य बातें

वात प्रकृतिवाले को कभी रूखी वस्तु न [illegible] [illegible] [illegible]ली भोजन करना चाहिए। इसी तरह [illegible] [illegible] [illegible] का—जिनका वर्णन आगे हो—[illegible] [illegible]

कि जिनमे आकाश में आने जाने या उड़ने का काम पड़े, तो इन लक्षणोंवाले मनुष्य की प्रकृति वात की समझनी चाहिए।

पित्त-प्रकृति की पहचान

जिस मनुष्य के केश जवानी मे ही पक जायँ अर्थात् सफेद हो जायँ, जिसकी बुद्धि तेज हो, जिसके शरीर से पसीना बहुत निकलता हो, जिसके स्वभाव मे गुस्सा जियादा हो, स्वप्न में जिसको अग्नि या और वैसे ही चमकीले पदार्थ दिखाई दे तो उस मनुष्य को पित्त की प्रकृतिवाला समझना चाहिए।

कफ-प्रकृति की पहचान

जिस मनुष्य की बुद्धि गम्भीर अर्थात् सुस्त हो, शरीर मोटा हो, केश चिकने हो, जो बलवान् हो, जिसको स्वप्न मे प्राय जलाशय अधिक दिखाई दे, ऐसे मनुष्य को कफ-प्रकृतिवाला समझना चाहिए।

वात-प्रकृति के ध्यान देने योग्य बाते

वात प्रकृतिवाले को कभी रूखी वस्तु न खानी चाहिए और न बासी भोजन करना चाहिए। इसी तरह वात के बिगड़नेवाले पदार्थों का—जिनका वर्णन आगे होगा—सेवन नहीं करना चाहिए। वात-प्रकृतिवाले को तेल का मलना, व्यायाम करना, और वातनाशक वस्तुओं का खाना हितकर है। घी का अधिक

पित्त-प्रकृति के ध्यान देने योग्य बातें

पित्त-प्रकृतिवाले को व्यायाम करना, खटाई खाना, गरम पदार्थों का खाना, धूप का लगना, गरम गरम चीजों का खाना और अन्यान्य पित्त के बिगाड़नेवाले कामों का करना मना है। उसको घी का अधिक खाना, मीठे रसवाली चीजों का खाना, और ठंडे भोजन इत्यादि का सेवन करना चाहिए।

कफ-प्रकृति के ध्यान देने योग्य बातें

कफ-प्रकृतिवाले को चिकनी और मीठी चीजें न खानी चाहिएँ। उसे दूध और घी भी कम खाना चाहिए। कसैली चीजें भी न खानी चाहिएँ। कफवाले को चरपरी और गरम चीजें खानी चाहिएँ। घी से भी कफ बढ़ता है इसलिए उसे घी भी कम ही खाना चाहिए।

चरक के मत से वात-प्रकृति के लक्षण

वात रूखी, हलकी, चल, बहु, शीघ्रगति, ठंडी, कड़ी और विशद होती है। वात के रूखा होने से वात-प्रकृतिवाला मनुष्य रूखा, कमजोर और दुबला होता है। उसका स्वर अत्यन्त रूखा, क्षीण, भर्राया हुआ, दबा हुआ, और जर्जर होता है। उसे नींद कम आती है। वायु के लघु (हलका) होने से मनुष्य की गति, चेष्टा, आहार और विहार सभी लघु और चपल होते हैं। वायु की गति चंचल होने से मनुष्य की सन्धियाँ (हड्डियों

के जोड), हड्डियाँ, भौंह, ठोडी, होठ, जीभ, सिर, कंधे, हाथ और पाँव भी अस्थिर—चचल—रहते हैं । वायु के बहु होने से मनुष्य बकबक बहुत किया करता है । वायु की शीघ्रगति होने से वात-प्रकृतिवाले मनुष्य के कार्यारम्भ, क्रोध और विकार शीघ्र ही होते रहते हैं। डर, प्रीति और द्वेष भी जल्दी होते हैं । सुनी हुई बात को मनुष्य शीघ्र ग्रहण कर लेता है, उसकी स्मरण-शक्ति अल्प होती है । वायु के शीतल होने से ऐसा मनुष्य शीत को नहीं सह सकता । उसको जाडा, काँपना और स्तम्भन अत्यन्त हुआ करता है । वायु के कडा होने से मनुष्य के केश, मूँछ, दाढी, रोम, नख, हाथ, पाँव, दाँत और मुँह सब कर्कश होते हैं। और वायु के विशद होने से शरीर के सब अङ्ग फटे से रहते हैं । उसके शरीर की नसे उठते बैठते बहुत चटका करती हैं । इन गुणों के सयोग से वात-प्रकृतिवाला मनुष्य प्राय अल्पबल, अल्पायु, अल्प-सन्तानवाला, अल्प साधनयुक्त और अधन्य होता है ।

पित्त-प्रकृति के लक्षण

पित्त उष्ण (गरम), तीक्ष्ण (तेज), विस्र (गन्धित), अम्ल (खट्टा), और कटु (चरपरा) होता है । उष्ण होने से पित्त-प्रकृतिवाला मनुष्य गरमी को सहन नहीं कर सकता । उसकी देह सुकुमार, कोमल और गौरवर्ण की होती है । उसकी देह पर फुंसियाँ, तिल और झाँई बहुत होती हैं । उसे भूख

प्यास बहुत लगती है। देह में झुर्री पडना, बालों का सफेद होना और बाल गिर पडना ये दोष जल्दी हो जाते हैं। मूँछ, केश प्राय कोमल, थोडे और कपिल वर्ण के होते हैं। पित्त की तीक्ष्णता से मनुष्य का पराक्रम भी तीक्ष्ण हो जाता है। अग्नि भी तीक्ष्ण होकर भूख, प्यास खूब लगाती है। उसमें कष्ट के सहन करने का सामर्थ्य हो जाता है। पित्त के द्रव होने से मनुष्य की सन्धियाँ (हड्डियों के जोड), और मांस, ढीला और नर्म होता है। पसीना, मल और मूत्र बहुत निकलता है। पित्त विस्र होने से उसके शरीर में से दुर्गन्धि निकला करती है। पित्त के कटु और अम्ल होने से मनुष्य के सन्तान कम होती है। इन गुणों के कारण पित्त प्रकृतिवाला मनुष्य मध्य-बल और मध्यायु होता है तथा ज्ञान, विज्ञान और धन से युक्त रहता है।

कफ-प्रकृति के लक्षण

कफ चिकना, लसदार, मृदु, मधुर, सार, भारी, शीतल आदि गुणोंवाला होता है। कफ के चिकनेपन से मनुष्य का अंग चिकना होता है। कफ के गुणों के अनुसार कफ-प्रकृतिवाला मनुष्य कोमल, सुकुमार, गौर वर्ण, सुन्दर और अधिक सन्तान-वाला होता है। उसका शरीर कडा और दृढ होता है। वह पुष्ट होता है। उसका भोजन, चेष्टा, विहार सब कम होते हैं। उसका स्वभाव शिथिलतायुक्त होता है। वह हर एक काम धीरे धीरे किया

करता है। उसे भूख, प्यास कम लगती और पसीना भी कम निकलता है। उसका मुँह प्रसन्न और स्वर मनोहर होता है। इन गुणों से कफ-प्रकृतिवाले मनुष्य बलवान्, धनवान्, विद्यावान्, साहसी और दीर्घायु होते हैं।

सोना

चरक में लिखा है कि सुख-दुःख, मोटापन-पतलापन, बलवान् और निर्बल होना, ज्ञान और अज्ञान, तथा जीवन और मरण सब निद्रा पर निर्भर हैं।

मन जब काम करते करते थक जाता है तब कर्मेन्द्रियाँ (काम करनेवाली इन्द्रियाँ जैसे—हाथ, पाँव, मुँह आदि) भी थक जाती हैं। उसी समय निद्रा आती है। कुसमय के सोने, प्रमाण से अधिक सोने या बिल्कुल न सोने से भी मनुष्य के सुख और आयु सब नष्ट हो जाते हैं। नींद ही के ठीक ठीक होने से मनुष्य को सुख मिल सकता है और आयु भी बढ़ सकती है।

दिन का सोना

जो लोग गाने, बजाने, पढ़ने, नशा पीने, बोझ ढोने, मार्ग चलने, या मेहनत के काम करने से थक गये हों उन्हें दिन में सोना लाभदायक है। इनके सिवा जिनके पेट में बीमारी हो, जिनके शरीर में घाव हो, जो दुबले हों तथा जो वृद्ध, बालक, दुर्बल और प्यासे हों उनको भी दिन में सोना चाहिए। जो मनुष्य

रात मे अच्छी तरह न सो सका हो और शोक या भय से पीडित हो उसे भी दिन मे सोने से लाभ ही होता है। ग्रीष्म-ऋतु को छोड़ कर और किसी ऋतु मे दिन मे नहीं सोना चाहिए। जो बहुत मोटे हों, जो कफ-प्रकृतिवाले हों, जो चिकनी चीजे अधिक खाते हों या जिन्हे कफ की बीमारी हो उन्हे दिन मे सोने से हानि ही होती है। ऐसा मनुष्य यदि दिन मे सो जाता है तो उसको कितनी ही बीमारियाँ घेर लेती हैं। जैसे—सिरदर्द, देह मे भारीपन, अगो का टूटना, अग्नि का नाश, हृदय का भारीपन, कफ का बढना, जुकाम, आधासीसी, फुन्सी, खुजली, खाँसी, भूल का होना, ज्वर, इन्द्रियो की निर्बलता इत्यादि। इसलिए दिन मे उन्हीं लोगो को सोना चाहिए जिनका वर्णन ऊपर किया गया है अर्थात् जिन्हें दिन में सोने से लाभ प्रतीत होता है।

देहरक्षा के लिए जिस तरह भोजन की आवश्यकता होती है इसी तरह निद्रा भी बड़ी उपयोगी है।

निद्रानाश के कारण

कितने ही लोगो को नींद नहीं आया करती। नींद न आने के कारण चरक में इस प्रकार लिखे हैं,—अधिक दस्तो का आना, नाक के द्वारा छींक लेने से मल का अधिक निकल जाना, वमन, भय चिन्ता, क्रोध, धूम्रपान, स्त्रीसग, फस्त खुलवाना, भूख रहना, चारपाई का खराब होना। यह सब काम नींद में अहित

। अर्थात् इनसे आई हुई नींद भी नष्ट हो जाती है। और
ों, सत्त्व गुण के बढ़ने और तमोगुण के घटने से नींद नष्ट हो
ाती है। बुढापे मे भी लोगों को नींद बहुत कम आती है।

रसों का वर्णन

रस छ प्रकार के हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और
ाय। (मीठा खट्टा, नमकीन, कडुआ, तीखा और कपैला)।

मधुर रस सोम गुण की अधिकता से पैदा होता है, पृथिवी
ौर अग्नि के गुणो की अधिकता से खट्टा रस बनता है। जल
ौर अग्नि के गुणों की अधिकता से नमकीन रस बनता है। वायु
ौर अग्नि के अधिक गुणो से मिल कर कटु रस बनता है।
ायु और आकाश के अधिक गुणो से तीखा रस तथा पवन
ौर पृथिवी के गुणों की अधिकता से कपैला रस बनता है।

जो रस अग्नि और वायु गुणवाले हैं वे प्राय ऊपर को
ाते हैं। अर्थात् खाने पर गले से ऊपर को अर्थात् सिर
ी ओर जाते हैं। कारण यह है कि वायु में हलकापन और
चलने का गुण है। इसी तरह अग्नि भी ऊपर ही को उठता
है। इसी कारण अग्नि और वायु गुणवाले पदार्थ ऊपर
ही को जाया करते हैं। और जो पृथ्वी और जल गुण-
ाली चीजें हैं वे नीचे को जाया करती हैं। क्योकि पृथ्वी
और जल भारी होते हैं। और जो रस ऐसे गुणो से मिले हुए

हैं कि जो नीचे को भी जाते हैं और ऊपर को भी, तो वे दोनो ओर को जाते हैं ।

मधुर रस के गुण

मीठा रस शरीर के अनुकूल होता है । इसी से रस, रुधिर, मास, मेदा, हड्डी, मज्जा, बल और वीर्य बढता है । इसी से आयु की वृद्धि होती है । यह इन्द्रियो को प्रबल करता तथा बल और वर्ण को बढाता है, पित्त, विष और वायु को नष्ट करता है, प्यास को शान्त करता है, त्वचा, केश और कण्ठ को हितकारी है । यह तृप्तिकारक और दृढताकारक है, दुबले आदमी को मोटा करता है । घावों को भरता है, नाक, मुँह, गला, होठ और ताल को प्रफुल्लित करता है, तथा दाह और मूर्च्छा को दूर करता है । यह रस चिकना ठंडा और भारी होता है । भारी होने से यह नीचे को जाता है ।

अतिसेवित मधुर रस के अवगुण

मधुर रस के गुणों पर मोहित हो कर इसका अधिक सेवन भी न करना चाहिए । क्योंकि इसका अधिक सेवन करने से इतनी बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं—इसके अधिक सेवन से शरीर बेडौल और मोटा हो जाता है, कोमलता, आलस्य, नींद का अधिक आना, देह में भारीपन रहना, अन्न में अरुचि, जठराग्नि की मन्दता, मुँह और गले के मांस का बढ़ना, श्वास खाँसी, जुकाम, शीतज्वर, अफारा, मुँह मे मीठापन, वमन की इच्छा, होश न

रहना आवाज का बिगड जाना, गलगण्ड, गण्डमाला, हाथी-पाँव की बीमारी, गले में सूजन, आँखों की बीमारी और इसी तरह की और भी कितनी ही बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इसलिए इसका अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। इसके अधिक सेवन से कफ बहुत बढ जाता है।

अम्ल रस के गुण

खटाई से भोजन में रुचि होती है अग्नि बढती है, देह पुष्ट होती है, भोजन जल्द पच जाता है मन को चेत रहता है, इन्द्रियाँ दृढ रहती हैं, बल बढता है अधोवायु सरता है, और हृदय की तृप्ति होती है। यह भोजन को खींचता है। इससे प्रसन्नता होती है। यह रस हलका, गरम और चिकना होता है। यह ऊपर को जाता है।

अतिसेवित के अवगुण

अधिक खटाई खाने से भी अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। उनमे से कुछ यहाँ वर्णन किये जाते हैं।

यह आँखो को बन्द सी कर देता है, कफ को पतला करता, रोएँ खडे करता है, पित्त को बढाता है, खून को बिगाडता है, मांस को जलाता है, देह को शिथिल करता है, दुबले पतले आदमी के शरीर में सूजन पैदा करता है। यह रस अग्नि के गुणों की अधिकता के कारण घाववाले, चोट लगे हुए, शूल-युक्त और

जले, फटे, टूटे स्थानो को पका देता है । इसके अधिक सेवन से कण्ठ और हृदय मे दाह पैदा होती है ।

लवण रस के गुण

यह रस पाचक, अग्नि बढानेवाला, छेदक, भेदक, तीक्ष्ण, मल का निकालनेवाला, वातनाशक और स्तम्भनाशक है । यह सब रसो से विपरीत है । इसके खाने से मुँह मे से राल टपकने लगती है । कफ पडने लगता है । यह रोगो को शुद्ध करता और भोजन को रुचिकारी बनाता है । यह बहुत भारी, चिकना और गरम होता है ।

अतिसेवित के अवगुण

इतना अधिक गुणकारी होने पर भी यह लवण रस अधिक सेवन से अवगुण ही करता है । सबसे बडा अवगुण इसमे यह है कि यह पित्त को बिगाड देता है । यह रुधिर को बिगाड देता है, प्यास लगाता है मूर्च्छा और गर्मी को बढाता है, और मास को गला देता है । यह कुष्ठ रोग को पैदा करता है, सूजन को फाड देता है, दाँतों को काला कर देता मनुष्य को नपुसक बना देता है । और इन्द्रियो को निर्बल बना देता है । यह देह मे सुकडन, बालों में सफेदी, सिर में गज पैदा कर देता है, रक्त-पित्त, अम्लपित्त, पित्त और विसर्प आदि अनेक रोगों को पैदा करता है ।

कटु रस के गुण

चरपरा रस मुँह का शोधन करता है, जठराग्नि को बढाता है, खाये हुए पदार्थ को सुखा देता है, नाक से और आँखों से पानी टपकाता है, कफ के रोगों को दूर करता है, भोजन को स्वादु बनाता है, खुजली को दूर करता है, घावों को भरता है, कीड़ों को मारता है, रुधिर की गाँठ को फोड देता है, पेट के मल की रुकावट को दूर करता है, यह रस हलका, गरम और रूखा है।

अतिसेवित के अवगुण

सबसे बडा दोष इस रस के अधिक सेवन में यह है कि यह मनुष्य को नपुसक बना देता है। इसके सिवा मोह, मलिनता, शिथिलता, दुबलापन मूर्च्छा, टेढापन और भ्रम को पैदा करता है। कण्ठ में दर्द और शरीर मे गरमी पैदा करता है। प्यास बढाता है। यह रस वायु और अग्नि की अधिकता से बना है इसलिए भ्रम, दाह, कम्प, आदि पीडा से युक्त पाँवो, हाथों, पसलियों और पीठ मे दर्द पैदा कर देता है।

तिक्त रस के गुण

तिक्त रस स्वय बडा बुरा होता है। इसके खाने से पहले तो अरुचि होती है, परन्तु खा चुकने के बाद यह भोजन में रुचि पैदा करता है। विष, कीडे, मूर्च्छा, दाह, प्यास, खुजली और कुष्ठ

रोग को यह दूर करता है। त्वचा और मांस को दृढ़ करता है और ज्वर को दूर करता है। अग्नि बढ़ाता है, पाचक है, पसीने, पित्त और ऐसे ही और भी कितनी ही गीली चीजों को सुखा देता है। यह रस रूखा, ठंडा और हलका होता है।

अतिसेवित के अवगुण

अधिक सेवन करने से यह रस रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य सबको सुखा डालता है। शरीर को निर्बल और दुबला करता है। मुँह को सुखाता है और वायु के कितने ही रोगों को पैदा करता है।

कषाय रस के गुण

कषाय रस रक्तपित्त को शान्त करता है। व्रणरोगी को हितकारी है। यह रस रूखा, ठंडा और भारी होता है।

अतिसेवित के अवगुण

अधिक सेवन किया हुआ कषाय रस मुँह को सुखाता है, हृदय में पीड़ा करता है, पेट को फुलाता है, वाणी को रोकता है, स्रोतों को बन्द कर देता है, देह को काली कर देता है, नपुंसक बना देता है, पेट में गुड़गुड़ाहट पैदा करता है, अधोवायु, मूत्र और पुरीष को रोकता है, दुबलापन, सुस्ती और प्यास को अधिक पैदा करता है। यह रस भी रूखा है। इसलिए यह भी वात की कितनी ही बीमारियों को पैदा करता है।

जिस तरह शरीर के भीतर वात, पित्त, कफ के ठीक ठीक रहने पर शरीर नीरोग रहता है और जब ये बिगड़ जाते हैं तब शरीर भी रोगी बन जाता है, इसी तरह ऊपर कहे गये छहों रसों की बात है। यह भी यदि ठीक ठीक खाये पिये गये हों तो शरीर को सुखी रखते हैं और जो विरुद्ध रीति से खाये पिये गये हों तो शरीर को रोगों का भण्डार बना देते हैं।

अब हम यहाँ पर यह वर्णन करते हैं कि कौन कौन से रस किस किस दोष को बढ़ाते हैं और कौन कौन से किस किस को घटाते हैं।

रसों के द्वारा दोषों का घटना-बढ़ना

तीन तीन रस एक एक दोष (वात, पित्त, कफ को दोष कहते हैं) को पैदा करते हैं और तीन ही तीन एक एक दोष को शमन करते हैं। जैसे—कटु, तिक्त और कषाय रस वात उत्पन्न करते हैं अर्थात् वायु को बढ़ाते हैं। मधुर, अम्ल और लवण वात को शान्त करते हैं। इसी तरह कटु, अम्ल और लवण रस पित्त को बढ़ाते हैं। मधुर, तिक्त और कषाय पित्त को घटाते हैं। मधुर, अम्ल, लवण रस कफ को पैदा करते हैं और कटु, तिक्त, कषाय कफ को शान्त करते हैं।

जब रस और दोष मिलते हैं तब जो रस जिस दोष के समान गुणवाला होगा वह उसी दोष को बढ़ावेगा। जैसे कटु रस वात का समानगुणी है तो दोनों मिल कर वायु को ही

अत्यन्त बढ़ावेंगे । इसी तरह के जितने अधिक रसोंवाले द्रव्यों का सेवन किया जाय उतनी ही बादी अधिक बढ़ेगी । और विपरीत गुणवाले रसों का अभ्यास किया जाय तो वह दोष शान्त हो जाता है, घट जाता है । जैसे कटु रस कफ दोष के विपरीत है तो कटु रस के सेवन से कफ शान्त हो जाता है । इसी तरह और भी समझ लेने चाहिएँ ।

इसी बात को विस्तार से कहते हैं । जैसे—तेल, घी और शहद, तीनों क्रम से वात, पित्त, कफ को शान्त करनेवाले हैं । इनमें से सदा अभ्यास किया हुआ तेल बादी को दूर करता है । क्योंकि तेल में चिकनाई, गरमी और भारीपन होता है, और वात में रूखापन, ठंडापन और हलकापन होता है । वात के तीनों गुण तेल के तीनों गुणों से विपरीत हैं । जब विपरीत गुणवाले द्रव्य मिलते हैं तब जिस गुण की अधिकता होती है वही अपने विरुद्ध गुणवाले द्रव्य को जीत लेता है । इसी लिए निरन्तर अभ्यास करने से तेल वायु को जीत लेता है ।

इसी तरह अभ्यास किया हुआ घी पित्त को शान्त कर देता है । क्योंकि वह मधुर, शीतल और मन्द होता है और पित्त इससे विपरीत अर्थात् अमधुर गरम और तीक्ष्ण है ।

इसी तरह शहद भी सेवन करने से कफ को दूर कर देता है । क्योंकि इसमें रूखापन, तीक्ष्णता और कषाय रस है और कफ में इसके विपरीत चिकनाई, मन्दता और मधुर रस है ।

इसी तरह और भी जो द्रव्य वात, पित्त और कफ के गुणों से विपरीत गुणवाले हैं उनके निरन्तर सेवन से वात, पित्त और —ान्त हो जाते हैं।

मकीन रस के अधिक सेवन से विशेष हानि

प्रायुर्वेद का सिद्धान्त है कि नमक का अधिक सेवन न ' चाहिए। इसको अधिक सेवन करने से केश, आँख और मे बड़ी हानि होती है। केश अकाल में ही भूरे हो जाते हैं, । की ज्योति कम हो जाती है और हृदय में पीड़ा हो है। यही नहीं यह लवण रस पुरुष के पुरुषत्व को नष्ट कर है। जो लोग इसका अधिक सेवन करते हैं वे अन्धे, नपुंसक गजे हो जाते हैं। इसलिए नमकीन चीजों का विशेष सेवन करना चाहिए।

नमकीन रस गरम, तेज, थोड़ा भारी, चिकना, स्रसन, अन्न चे बढ़ानेवाला और तत्काल शुभ फलदायक होता है। । अत्यन्त सेवन करने से दोष बिगड़ जाते हैं। देह मे ।लता, सुस्ती और दुर्बलता आ जाती है। वे लोग किसी के परिश्रम का काम नहीं कर सकते। चरक मे लिखा है कि लोगों में वाल्हीक देशवासी (बलख देशनिवासी), सौराष्ट्र, व (सिन्धी लोग) और सौवीर देशवासी हैं। ये लोग दूध ।ाथ भी सदा नमक खाया करते हैं। जो धरती खारी होती ऊपर होती है वहाँ औषध, पेड़, घास कुछ नहीं उगता कि उस जगह नमक अर्थात् खार अधिक होता है। यदि

कुछ उगता भी है तो तेजहीन होता है। क्योंकि नमकीन रस उनके तेज को नष्ट कर देता है।

भोजन-विचार

यह बात प्रसिद्ध है कि प्राय सब रोग पेट के विकार से होते हैं, और पेट में जो विकार होता है वह सब खाने पीने की गडबडी से होता है। सार यह निकला कि भोजन का ठीक ठीक करना ही स्वास्थ्यरक्षा का मुख्य उपाय है और भोजन की गडबड से ही मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड जाता है। इसलिए भोजन खूब विचार कर करना चाहिए। सबको सदा हितकारी ही भोजन करना चाहिए। ऐसा अहितकारी भोजन कि जिससे हानि हो, कभी किसी को नहीं करना चाहिए। चरक आदि आयुर्वेदज्ञ ऋषियो ने भोजन के सम्बन्ध मे मनुष्यों के लिए जिन जिन बातो का उपदेश किया है उन सबका अत्युपयोगी भाग यहाँ पर लिखते हैं।

हमारे वैद्यक-शास्त्र की आज्ञा है कि भोजन सदा गरम, चिकना और मात्रावत् करना चाहिए। मात्रावत् का मतलब रोज बराबर है। न किसी दिन कम न किसी दिन अधिक। पहले किये भोजन के पच जाने पर भोजन करना चाहिए। जब तक पहला किया हुआ भोजन न पच जाय तब तक दुबारा भोजन कभी न करना चाहिए। भोजन में कोई चीज ऐसी नहीं होनी चाहिए कि

जो अपनी प्रकृति के विरुद्ध अर्थात् हानिकारक हो। स्थान भी ऐसा होना चाहिए कि जहाँ मन प्रसन्न रहे, जहाँ मन में किसी तरह की ग्लानि न पैदा हो। भोजन न बहुत जल्दी जल्दी करना चाहिए और न बहुत धीरे धीरे। भोजन करते समय बहुत बोलना भी अच्छा नहीं और हँसना तो बिलकुल ही मना है। मतलब यह है कि भोजन खूब जी लगा कर ही करना चाहिए। भोजन करते समय मन को कहीं दूसरी जगह नहीं ले जाना चाहिए।

गरम भोजन के गुण

हम ऊपर लिख चुके हैं कि भोजन गरम गरम करना चाहिए। गरम भोजन के जो गुण या लाभ हैं वे हम यहाँ लिखते हैं। गरम भोजन मे जितना स्वाद होता है उतना ठण्डे में नहीं होता। इसके सिवा गरम भोजन में एक बड़ा गुण यह है कि वह जठराग्नि को अधिक प्रज्वलित कर देता है। मतलब यह कि गरम भोजन से पेट की आग अधिक प्रज्वलित हो उठती

होने से [illegible] करता है कि जठराग्नि [illegible] लगाता है । चिकना भोजन ज[illegible] [illegible] को शान्त करता है, शरीर को दृढ करता [illegible] [illegible] देह का रङ्ग निखार देता है और बुद्धि [illegible] [illegible] है । इन्हीं कारणों से मनुष्य को ऐसा भोजन कर[illegible] चाहिए जिससे चिकनाई अवश्य हो ।

परिमित भोजन के गुण

तीसरी बात यह होनी चाहिए कि भोजन प्रमाण से किया जाय। प्रमाण से भोजन करने का मतलब यह है कि अधिक न किया जाय। जितना आराम के साथ पचा सके उतना ही भोजन करे। प्रमाण से किया हुआ भोजन न वात को बिगाड़ता है, न कफ को और न पित्त को। परिमित भोजन आयु को बढ़ाता है, सुखपूर्वक पचकर निकल जाता है। परिमित भोजन थोड़े आराम से पच कर बल को बढाता है। इसलिए भोजन सदा प्रमाण से ही करना चाहिए।

जाने पर भोजन करने से वात, पित्त, कफ ये तीनो दोष अपने अपने स्थान पर रहते हैं। जठराग्नि बढ जाता है, भूख लगती है, शरीर मे जितने स्रोत, हैं वे सब खुले रहते हैं, शुद्ध डकार आती है, हृदय हलका और साफ रहता है, अधोवायु सरती है, वात, मूत्र और पुरीष ये सब अपने अपने समय पर होते रहते हैं। इत्यादि हेतुओं से पहले भोजन के पच जाने पर भोजन करने से आयु बढ जाती है और शरीर नीरोग रहता है। इसलिए पच जाने पर ही भोजन करना चाहिए।

एकान्त और स्वच्छ देश मे भोजन के गुण

भोजन ऐसे स्थान पर करना चाहिए कि जहाँ मन प्रसन्न हो। मनचाही जगह भोजन करने से भोजन जल्द पच जाता है।

बहुत जल्दी भोजन करने के गुण—अवगुण

भोजन बहुत जल्दी जल्दी नहीं करना चाहिए। बहुत जल्दी जल्दी भोजन करने से भोजन की चिकनाई ऊपर को चली जाती है, इसी लिए शरीर रूखा और शिथिल हो जाता है, भोजन अपनी जगह पर नहीं रहता। भोजन का असली लाभ उसे नहीं मिलता। इसलिए भोजन करने मे बहुत जल्दी नहीं करनी चाहिए।

बहुत धीरे धीरे भोजन करने के अवगुण

धीरे धीरे भोजन करना भी ठीक नहीं । बहुत धीरे धीरे भोजन करने से एक तो तृप्ति नहीं होती, दूसरे प्रमाण से अधिक खाया जाता है । भोजन ठंडा हो जाता है और वह पचता भी जरा देरी से है । उसके पचने मे विषमता आजाती है ।

मौन से भोजन के गुण

बिना बोले, बिना हँसे तथा जी लगा कर ही भोजन करना चाहिए । भोजन करते समय बकझक करने, हँसने, तथा और जगह मन चले जाने से वही उपद्रव होते हैं जो बहुत जल्दी भोजन करने में होते हैं । इसलिए भोजन करते समय, जहाँ तक हो, बातें बंद रखनी चाहिएँ और हँसना भी बंद रखना चाहिए । मतलब यह है कि भोजन करते समय मन और जगह कहीं नहीं ले जाना चाहिए ।

अनुकूल भोजन के गुण

भोजन करते समय अपने शरीर को देख लेना चाहिए । देख लेना चाहिए कि भोजन में कोई ऐसी चीज तो नहीं है जो हमारे शरीर के विरुद्ध हो । जो वस्तु हानिकारक हो उसे न खाना चाहिए। हितकारी भोजन करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है ।

उदर के तीन भाग

भोजन के लिए उदर के तीन भाग करने चाहिएँ। एक कडी चीज़ों के लिए, दूसरा पतली चीज़ों के लिए, और तीसरा वात, पित्त, कफ के लिए खाली। तात्पर्य यह है कि जितनी भूख हो उसका तिहाई ऐसा भोजन करना चाहिए जो कडा हो और एक तिहाई दूध, पानी आदि पतली चीज़ों से भर लेना चाहिए। रह गया एक तिहाई सो उसे खाली रखना चाहिए। एक तिहाई खाली रखने से कई लाभ हैं। एक तो यह कि श्वास के आने जाने मे सुभीता होगा, दूसरे भोजन के बाद पानी या और दूध पीना पडा तो जगह खाली रहने पर ही पिया जा सकता है। ऐसा करने से—दो तिहाई भोजन करने से—शरीर मे वे दोष नहीं पैदा होते जो अपरिमित भोजन करनेवालों के शरीर में प्राय हो जाया करते हैं।

मात्रा से किये हुए भोजन की पहचान

परिमित भोजन करनेवाले की पहचान यह है कि भोजन के बाद कोख में किसी तरह का दर्द न हो, हृदय में भारीपन या रुकावट न हो, पसलियों में फटने का दर्द न हो, पेट में अधिक भारीपन न मालूम हो और इन्द्रियों में प्रसन्नता हो, भूख और प्यास जाती रहे, उठने, बैठने, चलने, फिरने, श्वास लेने, श्वास छोडने, हँसने और बात करने में सुख मालूम हो, समय पर भोजन पच जाने पर भूख मालूम हो और बल,

वर्ण तथा पुष्टि का बोध हो । इन सब बातों के होने से समझना चाहिए कि भोजन मात्रा से किया गया है ।

अमात्रा के दुर्गुण

अमात्रा के दो भेद हैं, वह दो तरह की होती है। एक हीन मात्रा, दूसरी अधिक मात्रा ।

हीन मात्रा के लक्षण

हीन मात्रा अर्थात् प्रमाण से कम भोजन करने से बल, वर्ण और पुष्टि की कमी हो जाती है । तृप्ति न होने के सिवा रोग पैदा हो जाता है। इससे आयु घट जाती है, ओज धातु कम हो जाती है, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ शिथिल पड जाती हैं, शरीर का सार कम हो जाता है, शरीर में बेचैनकी बढ जाती है और इसी से वात के अस्सी प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं ।

अधिक मात्रा के लक्षण

वैद्यक-शास्त्र के प्राय समस्त आचार्यों का सिद्धान्त है कि मात्रा से अधिक भोजन करने से वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं, बिगड जाते हैं । इनके बिगडने पर फिर स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रह सकता ।

दोषों के कुपित होने का कारण

जो मनुष्य पहले भोजन की कडी कडी चीजों से पेट को खूब ठसाठस भर ले और फिर पानी आदि पतली चीजों से

गले तक भर लेवे तो उसके आमाशय* में रहनेवाले वात, पित्त, कफ तीनों भोजन से पीड़ित होकर एकदम कुपित हो जाते हैं। ये दोष प्रकुपित हो कर, उस बिना पचे भोजन के ढेर मे आश्रय लेकर, पेट मे गुड़गुड़ाहट पैदा कर देते हैं। और ऊपर या नीचे के मार्गों से पेट के मल को एकदम बाहर निकाल देते हैं तथा अपने अपने स्वभावानुसार अलग अलग रोगों को पैदा कर देते हैं।

तीनों दोषों के अलग अलग उपद्रव

अमात्रा से भोजन करनेवाले के पेट मे कुपित होकर वात-शूल, अफारा, देह का टूटना, मुँह का सूखना, मूर्च्छा, भूल का होना, अग्नि की विषमता (कभी भूख लगना, कभी न लगना, कभी जल्द पचना, कभी देर मे पचना), देह की नसो में सकोचन और स्तम्भन आदि उपद्रव पैदा करता है। और पित्त—ज्वर, दस्त, पेट और छाती मे जलन, प्यास, नशा, भ्रम और बकवाद को पैदा कर देता है। तथा कफ—वमन, अरुचि, भोजन का न पचना, शीत-ज्वर, आलस्य और शरीर का भारीपन आदि रोगों को पैदा करता है।

उदर-रोगों का मूल कारण

यही बात नहीं है कि अधिक मात्रा से खाने से ही आम

* जहां खाया हुआ भोजन जाकर पचा करता है उस स्थान को आमाशय कहते हैं।

वर्ण तथा पुष्टि का बोध हो । इन सब बातों के होने से समझना चाहिए कि भोजन मात्रा से किया गया है ।

अमात्रा के दुर्गुण

अमात्रा के दो भेद हैं, वह दो तरह की होती है । एक हीन मात्रा, दूसरी अधिक मात्रा ।

हीन मात्रा के लक्षण

हीन मात्रा अर्थात् प्रमाण से कम भोजन करने से बल, वर्ण और पुष्टि की कमी हो जाती है । तृप्ति न होने के सिवा रोग पैदा हो जाता है । इससे आयु घट जाती है, ओज धातु कम हो जाती है, मन, बुद्धि और इन्द्रिया शिथिल पड जाती हैं, शरीर का सार कम हो जाता है, शरीर मे बेचैनफो बढ जाती है और इसी से वात के अस्सी प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं ।

अधिक मात्रा के लक्षण

वैद्यक-शास्त्र के प्राय समस्त आचार्यों का सिद्धान्त है कि मात्रा से अधिक भोजन करने से वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं, विगड जाते हैं । इनके विगडने पर फिर स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रह सकता ।

दोषों के कुपित होने का कारण

जो मनुष्य पहले भोजन की कडी कडी चीजो से पेट को खूब ठसाठस भर ले और फिर पानी आदि पतली चीजों से

गले तक भर लेवे तो उसके आमाशय* मे रहनेवाले वात, पित्त, कफ तीनो भोजन से पीडित होकर एकदम कुपित हो जाते हैं। ये दोष प्रकुपित हो कर; उस बिना पचे भोजन के ढेर में आश्रय लेकर, पेट मे गुडगुडाहट पैदा कर देते हैं। और ऊपर या नीचे के मार्गो से पेट के मल को एकदम बाहर निकाल देते हैं तथा अपने अपने स्वभावानुसार अलग अलग रोगों को पैदा कर देते हैं।

तीनो दोषों के अलग अलग उपद्रव

अमात्रा से भोजन करनेवाले के पेट मे कुपित होकर वात-शूल, अफारा, देह का टूटना, मुँह का सूखना, मूर्च्छा, भूख का होना, अग्नि की विषमता (कभी भूख लगना, कभी न लगना, कभी जल्द पचना, कभी देर में पचना), देह की नसो में सकोचन और स्तम्भन आदि उपद्रव पैदा करता है। और पित्त—ज्वर, दस्त, पेट और छाती में जलन, प्यास, नशा, भ्रम और बकवाद को पैदा कर देता है। तथा कफ—वमन, अरुचि, भोजन का न पचना, शीत-ज्वर, आलस्य और शरीर का भारीपन आदि रोगों को पैदा करता है।

उदर-रोगों का मूल कारण

यही बात नहीं है कि अधिक मात्रा से खाने से ही आम

* जहाँ खाया हुआ भोजन जाकर पचा करता है उस स्थान को आमाशय कहते है।

दूषित होकर उदररोगों को पैदा करता हो, किन्तु भारी, रूखे, ठडे, सूखे, दूषित (सडे बुसे), गरिष्ठ, विदाही श्रौर विरुद्ध अन्न-पान के सेवन से भी आम बिगड जाता है। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या (डाह), लज्जा, शोक, मन के उद्वेग, और भय से घबराये हुए मन के द्वारा जो अन्नपान किया जाता है वह भी आम को बिगाड देता है। आम के बिगडने से ही पेट के सब रोग पैदा हो जाते हैं। विशूचिका (हैजा) इसी से होती है।

भोजन के पचने का स्थान

प्राणियो के नाभि और हृदय के बीच मे आमाशय होता है। उसी मे जाकर किया हुआ अन्नपान पका करता है। आमाशय में तो जाकर अन्न केवल पचता ही है। वहाँ से, फिर नाडियो (नालियो) के द्वारा और और आशयो में पहुँचाया जाता है।

वेगों के रोकने में उपद्रव

वेग अनेक हैं। जैसे मूत्र, पुरीष, वीर्य, अधोवायु, वमन, छींक, डकार, जँभाई, भूख, प्यास, आँसू और नींद। इनके वेगो को कभी न रोकना चाहिए। इनके वेगो के रोकने से जो जो उपद्रव पैदा हो जाते हैं उनका वर्णन यहाँ करते हैं।

मूत्र-निग्रह के रोग

मूत्र के रोकने से वस्ति और मूत्रेन्द्रिय में शूल पैदा हो जाता

है। मूत्र-निग्रह करनेवाले का मूत्र बड़े कष्ट से उतरता है। सिर में और पेट मे दर्द होता है। इसलिए मूत्र के वेग को कभी न रोकना चाहिए।

पुरीष-निग्रह के रोग

पायख़ाने की हाजत होने पर भी जो लोग नहीं जाते और उसके वेग को रोकते हैं, उससे भी कई रोग पैदा होते हैं। जैसे—पेट मे दर्द, सिर में दर्द और गर्मी, अधोवायु और दस्त का रुकजाना, पिंडलियों में हड़कल और अफारा। इसलिए पुरीष का वेग कभी नहीं रोकना चाहिए।

वीर्य-निग्रह के रोग

इसके रोकने से मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोशों में शूल हो जाता है। शरीर ऐंठने लगता है, हृदय मे पीड़ा होने लगती है और मूत्र रुक जाता है।

अधोवायु-निग्रह के रोग

अधोवायु का रोकना भी अच्छा नहीं। उसके रोकने से वात, मूत्र और पुरीष रुक जाते हैं। अफारा, सुस्ती, शूल और पेट में और कितने ही रोग पैदा हो जाते हैं। वायु के दोष से और भी कितने ही दोष पैदा हो जाते हैं।

वमन-निग्रह के रोग

वमन के रोकने से शरीर में खुजली, पित्ती, अन्न में अरुचि,

झाँई, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कोढ़ और चमट की और कितनी ही बीमारियाँ हो जाती हैं।

छींक रोकने के रोग

छींक के वेग को रोकने से गले की नसे जकड़ जाती हैं, सिर में दर्द, आधाशीशी और इन्द्रियों मे दुर्बलता पैदा हो जाती है।

डकार रोकने के रोग

डकार के रोकने से हिचकी, खाँसी, अरुचि, कम्पन, हृदय में भारीपन आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। इसलिए डकार के वेग को नहीं रोकना चाहिए।

जँभाई रोकने के रोग

जँभाई रोकने से देह झुक जाती है, हाथ पाँव जकड़ जाते हैं, नसें सिकुड़ जाती हैं, शरीर मे कँपकँपी होने लगती है। इसलिए जँभाई के वेग को भी नहीं रोकना चाहिए।

भूख रोकने के रोग

जब भूख लगे तभी खाना चाहिए। भूख रोकने से भी अनेक रोग पैदा होते हैं। भूख रोकने से दुबलापन, रंग का बिगड़ जाना, अरुचि, भ्रम ये रोग हो जाते हैं।

प्यास रोकने के रोग

प्यास के रोकने से कण्ठ और मुँह मे खुश्की हो जाती है। इससे बहरापन, थकावट, श्वास और हृदय मे पीडा होने लगती है।

आँसू रोकने के रोग

आँसुओ के रोकने से जुकाम, नेत्ररोग, हृदय के रोग और अन्न में अरुचि हो जाती है। इसलिए आँसुओ के वेग को भी न रोकना चाहिए। लोग रोते हुए बालक को एकदम चुप कराना चाहते हैं और उसके रोने के वेग को एकदम रोक देते हैं सो वह भी अच्छा नहीं। रोते रोते एकदम रुक जाने से, शोक के कारण पैदा हुआ विकृत पानी जो आँखो मे आ जाता है वह रुक कर नेत्रों को खराब कर देता है। इसलिए आँसुओ को रोकना अच्छा नहीं है।

नींद रोकने के रोग

नींद के रोकने से जँभाई, हडफूटन, सिर के रोग, आँखो मे भारीपन इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिए नींद का रोकना हानिकारक है।

कर्तव्य-कार्यो का वर्णन

आयुर्वेद के मतानुसार अब हम कर्तव्य-कर्मों का कुछ वर्णन करते हैं। चरक के सूत्रस्थान के आठवें अध्याय में कर्तव्याक-

र्तव्य-कर्मों के विषय मे बहुत कुछ लिखा हुआ है। यहाँ हम उसी का सार थोड़े मे लिखते हैं।

देव, गौ, ब्राह्मण, गुरुजन, वृद्धजन, सिद्ध और आचार्य का सदा सत्कार करना चाहिए। अग्नि में नित्य हवन करना, उत्तम प्रभाववाली जड़ी बूटियों को धारण करना, प्रात और सायं दोनो समय जल से शुद्ध होकर सन्ध्या करना, दोनो पाँवो को जल से शुद्ध रखना, एक पक्ष में तीन बार हजामत बनवाना, निर्मल वस्त्र धारण करना, सुगन्धित पदार्थों का धारण करना, साधु-वेश मे रहना, केशो मे कघी करना, सिर, कान, नाक और पाँवो में नित्य तेल लगाना, आये हुए मनुष्य का आदर-सत्कार करना, दुखिया का उपकार करना, दान करना, समय देख कर मीठी और उचित बात बोलना, जितेन्द्रिय रहना, धर्म करते रहना, सदा उन्नति के उपायो का करना, निश्चिन्त, निर्भय, बुद्धिमान, लज्जा-शील, उत्साही, कार्य-कुशल, क्षमाशील और वेदानुयायी होना, नम्रता, बुद्धि और विद्या मे बड़े सिद्ध, महात्मा और आचार्यों की सेवा करना, छाता, छड़ी और जूते धारण करना, आगे पीछे देख कर चलना, खराब जगह मे जाना, क्रोधी मनुष्यों के क्रोध को दूर करने का उपाय करना, डरे हुए लोगों का डर दूर करना, दरिद्रों पर दया करना, प्रतिज्ञा का पालन करना, पराये कठोर वाक्यो को सहने का अभ्यास करना, अपने क्रोध को तुरत दबाने का उद्योग करना, अपने शान्ति के गुण से सबके साथ बर्ताव करना और रागद्वेष के कारणों का मन से ही

त्याग कर देना—इत्यादि काम करने योग्य हैं। इनके करने से मनुष्य सुखी रह सकता है।

अकर्तव्य-कर्मों का वर्णन

झूठ बोलना, चोरी करना, पराई स्त्री को पाप की दृष्टि से देखना, दूसरे के धन पर लालच करना, वैर करना, निन्दा करना, अधर्मी और राजद्रोही के साथ रहना, बुरी सवारियों पर चढना, ऊँची नीची जगह में आना-जाना या उठना-बैठना, ऊँचे नीचे और बिना तकिये के छोटे पलँग पर सोना, पहाडियों की विषम चोटियों पर घूमना, वृक्षों पर चढना, जल की तेज धारा में नहाना, बेरी के पेड के नीचे जाना, अग्नि के पास जाना, बहुत खिलखिला कर हँसना, बिना मुँह ढँके जँभाई, छींक लेना और हँसना, नाक का कुरेदना, दाँतों को पीसना, नखों को तोडना, हड्डियों को पीटना, धरती पर लकीर खींचना, तिनके तोडना, मिट्टी के ढेलों का फोडना, पाँवों का हिलाना, देह का तोडना, चमकीले पदार्थ जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि का देखना, सूने घर में अकेले सोना, पापी मित्र, स्त्री और सेवक का रखना, उत्तम मनुष्यों के साथ वैर करना, नीचों का सग करना, बुरे आदमी का विश्वास करना, अनार्य मनुष्य का सहारा पकडना, किसी को डराना, अति साहस करना, अति सोना, अति जागना, अति स्नान करना, अति पीना, अति भोजन करना, साँप आदि हिंसक जीवों के पास जाना, सामने की हवा, धूप, ओस, और आँधी में रहना, लडाई करना,

भोजन करके विना हाथ मुँह धोये कहीं जाना, विना मुँह के पसीना सूखे नहाना, नगे होकर नहाना, गीली धोती का सिर पर लगाना, केशों को पकड कर खींचना, इत्यादि काम त्याज्य हैं, अकर्तव्य हैं। अकर्तव्य काम कभी न करना चाहिए। इनके न करने में ही सुख मिलता है।

आरोग्य रहने के कुछ और नियम

रात को दही न खाना चाहिए, सूखा सत्तू न खाना चाहिए किन्तु उसमें घी और मीठा जरूर मिलाना चाहिए। रात को सत्तू न खाय, भोजन कर चुकने पर भी न खाय, कई अन्न के मिले हुए सत्तू भी न खाय, तथा विना पानी मिलाये भी न खाय। बिना दाँतों से चबाये कोई चीज न खानी चाहिए। शरीर को टेढा करके छींकना, खाना और सोना नहीं चाहिए। मल, मूत्र आदि के वेगों के होते हुए कोई काम न करना चाहिए। पहले वेगों को दूर करके तब पीछे और कोई काम करना चाहिए, क्योंकि वेगो को रोक कर काम करने में पहले तो अच्छी तरह जी ही न लगेगा, जी न लगा तो काम बिगड जायगा, दूसरे वेग धारण करने में जो उपद्रव होते हैं उनके होने से कष्ट उठाना पडेगा। इसलिए पहले उपस्थित वेगो को दूर करके तब किसी काम में हाथ डालना चाहिए। स्त्री का निरादर न करे, स्त्री में अत्यन्त विश्वास भी न करे, उससे गुप्त बातें न कहे, ईश्वर के नियमों का उल्लघन न करे। सध्या के समय भोजन,

निद्रा, स्त्री सेवन और अध्ययन न करे, बालक, बूढ़े, लोभी, मूर्ख, निन्दित और नपुंसक के साथ कभी मित्रता भी न करे। बुरे कामों में कभी मन न लगावे, किसी का भी निरादर न करे। अभिमानी न बनना चाहिए। वृद्ध पुरुष से, गुरु से, बहुत मनुष्यों से और राजा से वैर न करे, भाई बन्धु, सेवक, कुसमय के सहायक और अपने भेद समझनेवाले को कभी निरादर करके घर से निकालना न चाहिए। विचार में ही समय न खो दे, काम भी करना चाहिए। बिना विचारे कोई काम न करे। काम करने के समय का उल्लङ्घन न करे। इन्द्रियों के वश में नहीं होना चाहिए। चञ्चल मन की चञ्चलता को धीरे धीरे कम करना चाहिए। देरी से काम न करे। क्रोध, शोक को रोकना चाहिए। शोक में एक-दम डूब भी न जाना चाहिए। काम बन जाने पर अति हर्ष न करे और बिगड़ जाने पर दीनता भी न करे। किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलेगा—इस बात पर सदा पूरा विश्वास रखना चाहिए। अपनी निन्दा या अपमान को कभी याद न करना चाहिए।

स्नान कर चुकने पर उत्तम उत्तम सुगन्धित द्रव्यों का अग्नि में हवन करना चाहिए। हवन से शरीर को पवित्र करके ज्ञान का उपदेश, दान, मित्रता, जीवों पर दया और प्रसन्नता धारण करके आत्मा को सुखी करना चाहिए।

जो मनुष्य ऊपर लिखे हुए नियमों का पालन करता है उसकी आयु सौ वर्ष से कम नहीं हो सकती। साधु-महात्मा लोग उसकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा ही किया करते हैं। सारी पृथ्वी

में उस मनुष्य का यश फैल जाता है । वह धर्मात्मा मनुष्य सारे प्राणियों का, विशेष कर मनुष्यों का, भाई हो जाता है । सब लोग उसे अपने भाई के समान ही जानते मानते हैं । इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि ऊपर लिखे हुए वैद्यक-शास्त्र के नियमों का सदा अनुष्ठान किया करें । इनके सिवा और भी जितने अच्छे सुखदायी काम हैं वे भी करने चाहिएँ ।

नेत्रों में अञ्जन लगाने के नियम

सुरमा लगाना नेत्रों के लिए बड़ा हितकर है । इससे मनुष्य को नियमानुसार सुरमा लगाना चाहिए । हर पाँचवीं या आठवें रात को नेत्रों में से पानी निकालने के लिए रसौत का लेप करना चाहिए । इस तरह करनेवालों की आँखों मे कभी कोई विकार नहीं होता । परन्तु दिन में कभी अञ्जन नहीं लगाना चाहिए क्योंकि जल के निकलने से नेत्रों की दृष्टि दुर्बल हो जाती है । दुर्बलावस्था में वह सूरज की धूप को सहन नहीं कर सकती, इसलिए सुरमा रात को ही लगाना चाहिए । जिस तरह सोने के आभूषण, तेल, बालू आदि से धोये जाने पर निर्मल होकर चमकने लगते हैं इसी तरह मनुष्य के नेत्र अञ्जन लगाने से निर्मल हो जाते हैं और दृष्टि भी निर्मल होकर निर्मल आकाश में चन्द्रमा के समान शोभित हो जाती है ।

दन्तधावन के नियम

चरक के सूत्रस्थान में लिखा है कि—

आशोस्थिताग्र द्वौ काल्यौ कषाय कटुतिक्तकम्।
भक्षयेद्दन्तपवन दन्तमांसान्यबाधयन्।

मतलब यह है कि दिन में दो बार* प्रात और साय दाँतन करनी चाहिए। वह दाँतन कसीले, कडवे या तिक्त रसवाले वृक्ष की हो। उसके आगे के हिस्से को डाढ से दबा दबा कर ब्रुश या कूची के सदृश बना लेना चाहिए। उसे ऐसी सावधानी से दाँतो पर रगडे कि मसूडे न छिलने पावें। नित्य हरी दाँतन करने से मुँह की बदबू दूर हो जाती है। जायका सुधर जाता है। जीभ, मुँह और दाँतो का मैल दूर होकर भोजन में रुचि पैदा होती है।

तेल के कुल्ले करने के १० गुण

मुँह से पानी की तरह तेल के कुल्ले करने, मुँह मे तेल रखने से बडा लाभ होता है। एक तो जबडे मजबूत हो जाते हैं। दूसर आवाज तेज हो जाती है और तीसरे मुँह भी मजबूत हो जाता है। चौथे रस का उत्तम ज्ञान और भोजन मे रुचि हो जाती है। पाँचवें उसका गला कभी सूखता नहीं, सदा तरावट बनी रहती है। छठे होठों के फटने का डर नहीं रहता। सातवें दाँत जल्द नहीं गिरने पाते, किन्तु और दृढ हो जाते हैं। आठवें

*आज-कल भारतवर्ष में सब प्रान्तों में प्रात काल एक ही बार दाँतन करने का रिवाज है। सो भी पुरुष ही करते हैं, स्त्रियाँ सब जगह नहीं करतीं। परन्तु गुजरात और बुन्देलखण्ड में प्राय स्त्री और पुरुष दोनों करते हैं।

दाँतो मे शूल नहीं होता। नवें खटाई खाने से दाँत खट्टे नहीं होते और दसवें कडे से कडे भोजन के चबाने के योग्य दाँत दृढ़ हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य को तेल के कुल्ले करने चाहिएँ।

सिर में तेल लगाने के गुण

सिर और माथे में नित्य तेल लगाने से सिर में दर्द नहीं होता, सिर मे गञ्ज रोग नहीं होता और न जल्द केश सफेद होते हैं। तेल लगानेवाले के केश गिरते भी नहीं। सिर और दिमाग मे बल अधिक बढ जाता है। केशों की जड मजबूत हो जाती है। केश लबे, मुलायम और काले हो जाते हैं। सारी इन्द्रियाँ प्रफुल्लित और चमडा बडा नरम हो जाता है। नींद गहरी आती है और सुख मालूम होता है। इसलिए सिर में रोज तेल लगाना चाहिए।

कान में तेल डालने के गुण

कानों मे भी रोज तेल डालना चाहिए। इससे कान मे वा का कोई रोग नहीं होता। कभी कानों मे सूजन नहीं होती इसके सिवा मन्याग्रह और हनुग्रह (ठोडी का- जकडना) रोग भी नहीं सताते और ऊँचा सुनना या बहरापन सब दूर हो जाता है।

देह पर तेल मलने के गुण

जिस तरह तेल चुपडने से मिट्टी का वर्तन, चमडा या गाडी

का धुरा इत्यादि चीजें दृढ़ और कठिन काम करने योग्य बन जाती हैं इसी तरह तेल मलने से देह दृढ़, त्वचा सुन्दर और कोमल हो जाती है। तेल मलनेवाले के शरीर से वायु के रोग दूर ही रहते हैं। भारी से भारी कठिन परिश्रम के काम करने योग्य शरीर हो जाता है। इसलिए तेल रोज लगाना चाहिए। तेल लगानेवाले के शरीर में चोट लगने से कुछ अधिक हानि नहीं होती। क्योंकि उसकी त्वचा और हड्डियाँ ऐसी मजबूत हो जाती हैं कि छोटी मोटी चोट का उन पर कुछ भी असर नहीं होता। रोज तेल लगाने से शरीर के अवयव पुष्ट, बलवान् और दर्शनीय हो जाते हैं। बुढापा जल्द नहीं सताता। पाँवों मे तेल लगाने से खरदरापन, खुश्की, रूखापन, थकावट और पाँवों का सोजाना ये सब उपद्रव शान्त रहते हैं। पाँव नरम, बलवान् और स्थिर हो जाते हैं। इसके सिवा पाँवों में तेल लगाने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि नेत्रों की दृष्टि खूब तेज हो जाती है। तेल लगाने से वायु के रोग नहीं होते, पाँवों मे बिवाई भी नहीं फटती। इसी तरह स्नान करना, निर्मल वस्त्र धारण करना, सुगन्धित पुष्पों का रखना, रत्न धारण करना, हजामत बनवाना, जूता या खड़ाऊँ का पहनना, छाते का धारण करना, छड़ी रखना इत्यादि कितने ही काम वैद्यक-शास्त्रानुकूल शरीर-रक्षा के लिए उपयोगी हैं। जिस तरह मनुष्य-नगर का रक्षक नगर की रक्षा किया करता है और रथवान् रथ की खबरदारी रखता है इसी तरह मनुष्य को भी अपने शरीर की रक्षा में सदा सावधान रहना चाहिए। जो लोग

काल में चन्द्रमा भी पूरा बलवान् होता है और अपनी किरणों से सारे संसार को प्रफुल्लित कर देता है। इस कारण विसर्ग-काल न बहुत गरम होता है और न बहुत ठण्डा। इसी लिए यह समय प्रकृति के अनुकूल होता है।

आदान-काल में सूर्य्य अपनी किरणों के द्वारा जगत् से रस खींचता है और वायु भी खूब तेज चल चल कर सब चीज़ों को सुखा डालता है। यही कारण है कि आदान-काल में सूर्य्य और वायु शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में उत्तरोत्तर रूखापन पैदा करते हैं। क्योंकि जब सब चीज़ों का रस चला गया तब वे नीरस—रूखी—हो जाती हैं। इसी लिए आदान-काल में कड़ुवे, तीखे और कषैले रस बहुत बढ़ जाते हैं। क्योंकि ये तीनों रस रूखे हैं। मतलब यह निकला कि आदान-काल में रूखे रसों की वृद्धि होती है। इसी रूखेपन के कारण इस समय सब मनुष्य निर्बल पड़ जाते हैं।

वर्षा, शरद और हेमन्त में सूर्य्य दक्षिणायन होता है। वर्षा के कारण हवा मन्द पड़ जाती है। आकाश के स्वच्छ हो जाने से चन्द्रमा का बल बढ़ जाता है। वर्षा के जल से गर्मी शान्त हो जाती है। उन दिनों रसीले रसों की बढ़ती होती है और क्रम से अम्ल, लवण और मधुर रस अधिक बढ़ जाते हैं। इसी कारण विसर्ग-काल में मनुष्य बलवान् होते हैं।

विसर्ग काल की पहली ऋतु वर्षा और आदान-काल के अन्त की ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य बहुत दुर्बल रहता है। दोनों

अपने शरीर के आरोग्य रहने के काम करने में आलस्य नहीं करते वही सुखी रहते हैं।

ऋतुचर्या

अब ऋतुचर्या पर भी कुछ लिखा जाता है। ऋतुचर्या उसे कहते हैं जिसमे यह मालूम हो कि किस ऋतु में क्या काम करना चाहिए और क्या नहीं। यही विषय यहां पर सक्षेप में लिखा जाता है। वर्ष भर मे छः ऋतुएँ होती हैं। उनमें शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतु उस समय होती हैं जब सूर्य्य उत्तरायण होता है। इस समय को 'आदान-काल' कहते हैं। तीन—वर्षा, शरद और हेमन्तऋतु उस समय होती हैं जब सूर्य्य दक्षिणायन होता है। इस समय को 'विसर्ग-काल' कहते हैं। सार यह निकला कि माघ से आषाढ तक छः मास तक आदान काल और श्रावण से पौष तक छः मास विसर्ग-काल होता है। आदान का मतलब ग्रहण करना है और विसर्ग का त्याग। आदान-काल में सूर्य्य सब रसादि को खींच लेता है इसलिए उसे आदान-काल—लेने का समय—कहते हैं। और विसर्ग-काल में सूर्य्य सब रसादि को देता है इसलिए उसे विसर्ग-काल—देने का समय—कहते हैं।

आदान और विसर्ग-काल

विसर्ग-काल मे वायु बहुत रूखा नहीं चलता, किन्तु आदान-काल मे अत्यन्त रूखा चला करता है। विसर्ग-

मलाई, रबड़ी और मिठाई, ईख और उससे बनी हुई चीजें—जैसे गुड़, शक्कर, बूरा, मिठाई, तेल, नये चावल और गरम पानी, इन सबका सेवन करना चाहिए। जो लोग इन चीजों का सेवन करते हैं उनकी आयु क्षीण नहीं होती। तेल लगाना, उबटन मलना, सिर में तेल डालना, सूर्य की धूप में रहना, गरम जगह में रहना और गरम चीजों का व्यवहार करना—ये काम शीतकाल में जरूर करने चाहिएँ।

वसन्त ऋतु का वर्णन

हेमन्त ऋतु का इकट्ठा किया हुआ कफ वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से प्रेरित होकर जठराग्नि को रोक देता है। इस तरह अग्नि में गड़बड़ पहुँचाने के कारण अनेक रोगों के पैदा करने का भी कारण हो जाता है। इसलिए वसन्त ऋतु में वमन और विरेचन (दस्त) जरूर करना चाहिए। वसन्त काल में भारी, खट्टी, चिकनी और मीठी चीजों का खाना और दिन में सोना बिलकुल बंद कर देना चाहिए। वसन्त काल में व्यायाम (कसरत) करना, तेल मलना, औषधियों के धुएँ को पीना, अञ्जन लगाना, और उत्तम साफ और ताजा पानी काम में लाना चाहिए। ... पर चंदन या अगर का लेप करना और गेहूँ खाना ...। वसन्त-काल में वन-उपवनों की भी सैर जरूर करनी

कालो के बीच की ऋतुओ—शरद और वसन्त—में मनुष्य में मध्यम बल रहता है, या यो कहिए कि न अधिक दुर्बल होता है और न अधिक निर्बल । बाकी दोनो ऋतुओ—हेमन्त और शिशिर—मे मनुष्य अधिक बलवान् होता है ।

शीतकाल में अग्नि की प्रवलता

ऊपर के कथन से यह सिद्ध हो चुका है कि हेमन्त और शिशिर ऋतुओ में मनुष्य अधिक बलवान् होते हैं । इसी कारण शीतकाल मे मनुष्यो की जठराग्नि बहुत बढ जाती है । बात यह है कि वह गर्मी बाहर की ठडी हवा से भीतर की भीतर ही रुकी रहती है । इसी लिए शीतकाल मे मात्रा से कुछ अधिक भी खा लेने से भोजन पच जाता है । यही कारण है कि शीतकाल मे लोगो को भूख खूब तेज लगा करती है । जो लोग शीतकाल में काफी भोजन नहीं करते उनके पेट की आग उनके शरीर के रसो को जला डालती है । क्योंकि जब उसे कुछ खाने को न मिलेगा तब वह शरीर के रसो को न खायगी तो और क्या करेगी ? रस के सूख जाने पर देह मे रुखाई पैदा हो जाती है। इसी कारण ठडी हवा से शरीर में कितने ही उपद्रव पैदा हो जाते हैं ।

शीतकाल में सेवनीय पदार्थ

शीतकाल में चिकनी, खट्टी और नमकीन चीजें खानी चाहिएँ । हेमन्त ऋतु में गाय का दूध और दूध से बनी हुई

में देह के दुर्बल होने से जठराग्नि भी दुर्बल हो जाता है। वही अग्नि वर्षाकाल में वात आदि दोषों से बिगड़ कर और भी ज्यादा दुर्बल हो जाता है। वर्षाकाल में धरती में भाप उठने के कारण, मेह के बरसने से और अग्नि के कमजोर हो जाने से, वात, पित्त, कफ तीनों दोष बिगड़ जाते हैं। इसलिए बरसात के दिनों में सब काम खूब सोच समझ कर करना चाहिए जिससे अग्नि बलवान् बना रहे और दोष भी गड़बड़ न हों। इस मौसम में दिन का सोना, ओस का लगना, नदी का पानी, व्यायाम (कसरत), धूप, परिश्रम के काम कभी न करने चाहिएँ।

इस ऋतु में शहद का खाना बहुत ही अच्छा है। इस मौसम में जिस दिन कुछ कुछ ठंडक और मेह की ज्यादती हो उस दिन खटाई, चिकनाई और नमकीन चीजें अधिक खानी चाहिएँ। ऐसा करने से वादी शान्त रहती है। जठराग्नि के न बिगड़ने के लिए जौ, गेहूँ और पुराने चावल खाने चाहिएँ। शहद मिला कर जल का पीना भी बहुत अच्छा है। धरती से ऊपर ही ऊपर लिया हुआ वर्षा का पानी पीना इस मौसम में अच्छा गुणकारी होता है। गरम करके ठंडा किया हुआ, कुएँ का ताज़ा, अथवा तालाब का पानी भी अच्छा होता है। इस मौसम में भीगी हुई, नमदार और ऐसी जगह में रहना अच्छा नहीं जिसमें सील हो।

शरद् ऋतु का वर्णन

बरसात के दिनों में ठंडी हवा और पानी

ग्रीष्म ऋतु का वर्णन

गरमी के मौसम मे सूर्य अपनी किरणों से जगत् के सार को—रस को—पी जाता है। इस ऋतु मे मीठा और ठंडा अन्न-पान करना हितकारी है। परन्तु वह पतला और चिकना जरूर हो। खाँड (चीनी) मिला कर ठण्डाई बनाकर इस मौसम में पीनी चाहिए। घी, दूध और साठी के चावलों का खाना इस मौसम में बहुत लाभदायक है। नशे की चीजें कभी नहीं खानी चाहिएँ, और खास कर गरमी के मौसम में तो उनसे बिलकुल ही दूर रहना चाहिए। नमकीन, खट्टी, कड़वी और गरम चीजों का खाना भी इस मौसम मे मना है। खाने की जरूरत हो हो और बिलकुल न छोड़ी जा सकें तो कम खाना चाहिए। गरमी के दिनों में दिन में सोना अच्छा है। ठंडे मकान में सोना चाहिए। रात को ऐसे मैदान में सोना चाहिए कि जहाँ शीतल चाँदनी छिटक रही हो। मकान के ऊपर की छत पर सोना और शरीर में चंदन आदि ठंडी ठंडी चीजों का लेप करना लाभदायक है। वन, उपवन, शीतल और खिले हुए फूलों का सेवन इस मौसम मे बड़ा हितकारी है।

वर्षा ऋतु का वर्णन

पानी बरसने के कारण जितना वर्षाकाल प्राणियों को सुख का कारण होता है उतना स्वास्थ्य बिगाड़ने के कारणों को पैदा करने से यह मनुष्यों को बड़ा ही दुखदायी है। आदान-काल

है।" शरीर के अंगों को वायु ही जोड़ता है। वायु से ही मनुष्य बोलते, सुनते और सूँघते हैं। यही मल को बाहर निकालनेवाला और गर्भाशय में गर्भ बनानेवाला है। जब वायु ठीक ठीक रहता है, कुपित नहीं होता, तब ऊपर कहे हुए काम ठीक ठीक होते रहते हैं।

भीतरी कुपित वायु के काम

जब शरीर के भीतर का वायु बिगड़ जाता है तब शरीर में कितने ही रोग पैदा कर देता है। बल, शरीर के रंग, सुख और आयु को नष्ट कर देता है। मन को विकल कर देता है, और सारी इन्द्रियों को नष्ट कर देता है। वायु के ही बिगड़ जाने से लोग कम सुनने लगते हैं। उन्हें कम दिखाई देने लगता है। सूँघने की शक्ति कम हो जाती है। जीभ का स्वाद जाता रहता है। हाथ-पाँवों में काम करने और चलने-फिरने का सामर्थ्य नहीं रहता और बोलने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। मतलब यह कि वायु के बिगड़ जाने से ही ये सारी बातें हो जाती हैं। गर्भ का बिगाड़ना या गिराना, बिगड़े हुए वायु का ही काम है। बच्चा होने में जो देरी होती है यह वायु की ही लीला है। भय, शोक, मोह, दीनता और बकवाद करना ये सब बिगड़े हुए वायु के ही काम हैं। वायु ही प्राणों को रोक कर मृत्यु का कारण होता है।

ठंडक के सहने योग्य हो जाता है । उसी शरीर मे शरद्काल के सूर्य की धूप लगने के कारण इकट्ठा हुआ पित्त बिगड जाता है । इसलिए शरद्काल में मीठे हलके ठंडे कुछ कुछ तिक्त और पित्त के शान्त करनेवाले खान-पान का सेवन करना चाहिए । इस मौसम में तिक्त रस का अधिक खाना-पीना, घी पीना, जुलाब लेना, फस्त खुलवाना, धूप में दौडना—ये काम छोड देने चाहिएँ । इस ऋतु में इसी ऋतु के खिले हुए फूलो की माला, स्वच्छ वस्त्र और सायकाल में चन्द्रमा की किरणों का सेवन बहुत ही हितकर है ।

जुलाब लेने का समय

चरक के सूत्रस्थान में लिखा है कि वसन्त ऋतु के पहले महीने (चैत्र) में, वर्षाऋतु के भी पहले (श्रावण) महीने मे और हेमन्तऋतु के पहले ही (अगहन) महीने मे जुलाब लेना चाहिए ।

वायु का विशेष वर्णन

वायु दो तरह का है । एक शरीर के भीतर रहनेवाला और दूसरा बाहर रहनेवाला । वायु ही ससार को पैदा करने और सहार करनेवाला है । यही शरीर के भीतर रह कर तरह तरह के काम करता है । इसी से मनुष्य चलत-फिरते हैं । मन को वायु ही रोकनेवाला है और हर एक कामों में लगानेवाला है । वायु ही सारी इन्द्रियो को अपने अपने कामों में लगाता

ाना, फसल का बिगडना, महामारी आदि रोगों का होना
इत्यादि सब काम बाहरी वायु के कुपित होने से ही होते हैं।

संयोगविरुद्ध भोजन

कौन चीज किस चीज के साथ मिल कर कैसा गुण करती है और किस चीज के खा लेने के बाद क्या चीज नहीं खानी चाहिए? किससे क्या हानि होती है? ऐसी बातों का वर्णन वैद्यक-शास्त्र में बड़े विस्तार से किया गया है। हम उस प्रकरण में से यहाँ उन बातों को लिखते हैं जिनका प्रचार आज कल लोगों में बहुत है।

मछली और दूध एक साथ न खाना चाहिए। क्योंकि पचने पर मछली भी मधुर है और दूध भी मधुर है। इस कारण दोनों भारी हैं। एक और खराबी यह है कि मछली तो गरम है और दूध है ठंढा। इसलिए गर्मी-सर्दी के विरोध से ये खून को बिगाड देते हैं और भारी होने से शरीर के स्रोतों के मार्ग बंद कर देते हैं।

मूली, लहसुन, सहँजन, तुलसी, सफेद तुलसी और वन-तुलसी को खाकर दूध नहीं पीना चाहिए। इनके ऊपर दूध पीने से मनुष्य का खून बिगड जाता है। यही नहीं, कोढ तक हो जाता है।

बथुए का साग और पके हुए [illegible] इन दोनों को शहद और दूध के साथ [illegible] से

बाहरी वायु के काम

बाहरी वायु भी बड़े बड़े काम बनाता है। वायु ही पृथ्वी को धारण करता, आग को जलाता और सूर्य, चन्द्र, तारा आदि को अपने अपने चक्रों में घुमाता है। बादलों का बनना, मेंह बरसना, फूल और फलों का खिलना, लगना, वनस्पतियों का उगना, ऋतुओं का बदलना, सोना, ताँबा, हीरा आदि का जुदा जुदा बनना, बीज से अंकुर का निकलना, उनका बढ़ना, गीली चीजों का सूखना, और बिगड़ी हुई चीजों के दुर्गुणों का सूखना इत्यादि काम वायु के हैं। जब तक बाहरी वायु ठीक ठीक रहता है तब तक ऊपर लिखे सब काम ठीक ठीक होते रहते हैं।

बाहरी कुपित वायु के काम

जब बाहरी वायु बिगड़ता है तब वह इतने वेग से चलने लगता है कि पर्वतों के शिखर टूट टूट कर गिर पड़ते हैं। बड़े बड़े पेड़ जड़ से उखड़ कर गिर पड़ते हैं। समुद्र में तूफान का आना, झील, तालाब आदि में बड़ी बड़ी लहरों का उठना, नदियों में पानी का चक्करदार होकर बहना, भूचाल होना, मेघों का गर्जना, कुहरा, धूल, बालू, मछली, मेंढक, साँप, खार, रुधिर, ओले और बिजली का गिरना ये सब काम बाहरी वायु के बिगड़ने से ही होते हैं। मौसमों का ठीक ठीक न

चाहिए। क्योंकि ये परस्पर विरुद्ध हैं। विरुद्ध भोजन से सदा दूर रहना चाहिए। जो लोग बेजाने विरुद्ध भोजन करते हैं उनके शरीर में अनेक रोग घर बना लेते हैं। इसलिए कभी किसी को विरुद्ध भोजन नहीं करना चाहिए।

मोटापन और दुबलापन

मनुष्य का न बहुत मोटा होना भी अच्छा और न बहुत दुबला होना ही अच्छा। बहुत मोटे आदमी की आयु कम होती है, जल्द बुढापा आ घेरता है, दुर्बलता, भूख और प्यास का बहुत लगना ये सब काम होने लगते हैं।

बहुत मोटे होने का कारण

बहुत भोजन करने से, बहुत भारी और मीठी चीजों के खाने से, ठंडी और चिकनी चीजों के अधिक खाने से, दंड-कसरत या और कोई मेहनत का काम न करने से, दिन में सोने से, ऐश-आराम में पडे रहने से, दिमागी काम कम करने से, चिन्ता न करने से और माता-पिता के मोटेपन से भी मनुष्य बहुत मोटा हो जाता है। मोटे आदमी के शरीर में मेद भी बढा करती है और धातु बहुत कम बढते हैं। यही कारण है कि उसकी आयु कम होती चली जाती है। आलस्य और सुकुमारता इतनी बढ जाती है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। मेद के भारीपन से बुढापा भी जल्द घर दबाता है। इसी लिए उसके [illegible] करता है और पसीने के अधिक

बहुत ही हानि होती है। बल, वर्ण, तेज और वीर्य नष्ट हो जाता है। और कितने ही भारी भारी रोग घेर लेते हैं और नपुसकता तो जरूर ही हो जाती है।

इसी तरह पके हुए लकुच (आलूचे) फल को उरद की दाल, पानी या गुड़ और घी के साथ न खाय। और आम, अमरा, बिजौरा नींबू, करौदा, केले की फली, जम्भीरी नींबू, बेर, जामन कैथ, इमली, अखरोट, पनस, नारियल, अनार, और आँवला तथा इसी तरह के और भी फल आदि दूध से विरुद्ध हैं। मतलब यह कि ये चीजे दूध के साथ न खानी चाहिएँ या इन्हें खाकर तुरन्त दूध न पीना चाहिए।

कँगनी, वनमूँग, मोठ, कुलथी, उरद, चौरा ये दूध के सग विरुद्ध हैं। तिल से पकाया हुआ पोई का साग दस्त है। शहद को गरम करके कभी न खाना चाहिए। न इन्हें गरम चीज में डाल कर खाना चाहिए। तात्पर्य यह है को गरमाई से दूर रखना चाहिए। परिश्रम करने शहद नहीं खाना चाहिए। ऐसा करने से और ते की मृत्यु तक हो सकती है।

बराबर शहद और घी, शहद और वा—पानी, बराबर शहद और पुष्कर बीज (चीजें विरुद्ध हैं। इन्हें न खाना उसके ऊपर गरम पानी कभी न पीना चा हुआ फथीला और मकोय का बासी

चाहिए। क्योंकि ये परस्पर विरुद्ध हैं। विरुद्ध भोजन से सदा दूर रहना चाहिए। जो लोग बेजाने विरुद्ध भोजन करते हैं उनके शरीर में अनेक रोग घर बना लेते हैं। इसलिए कभी किसी को विरुद्ध भोजन नहीं करना चाहिए।

मोटापन और दुबलापन

मनुष्य का न बहुत मोटा होना भी अच्छा और न बहुत दुबला होना ही अच्छा। बहुत मोटे आदमी की आयु कम होती है, जल्द बुढापा आ घेरता है, दुर्बलता, भूख और प्यास का बहुत लगना ये सब काम होने लगते हैं।

बहुत मोटे होने का कारण

बहुत भोजन करने से, बहुत भारी और मीठी चीजों के खाने से, ठंडी और चिकनी चीजों के अधिक खाने से, दंड-कसरत या और कोई मेहनत का काम न करने से, दिन में सोने से, ऐश-आराम में पड़े रहने से, दिमागी काम कम करने से, चिन्ता न करने से और माता-पिता के मोटेपन से भी मनुष्य बहुत मोटा हो जाता है। मोटे आदमी के शरीर में मेद भी बढ़ा करती है और धातु बहुत कम बढ़ते हैं। यही कारण है कि उसकी आयु कम होती चली जाती है। आलस्य और सुकुमारता इतनी बढ जाती है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। मेद के भारीपन से बुढापा भी जल्द घर दबाता है। इसी लिए उसके शरीर से पसीना बहुत निकला करता है और पसीने के अधिक

निकलने से ही देह मे दुर्गन्ध आया करती है। जठराग्नि के तेज होने और कोठे में भीतरी वायु की अधिकता से भूख और प्यास भी मोटे आदमी को बहुत लगा करती हैं।

मेदे के बहुत बढ जाने से वायु के आने-जाने के मार्ग रुक जाते हैं इससे वह बहुत करके शरीर के भीतर ही घूमती रहती है और अपने वेग से भीतर ही भीतर जठराग्नि को धधकाती रहती है और भोजन को सुखाती रहती है। इसी लिए मोटे आदमी का भोजन जल्द पच जाता है। भोजन के जल्द पच जाने से बार बार जल्द जल्द भोजन करने की इच्छा हुआ करती है। यदि भोजन के मिलने में कुछ देर होती है तो अनेक प्रकार के कितने ही घोर रोग पैदा हो जाते हैं। मतलब यह कि मोटे आदमी के लिए अग्नि और वायु दोनों ही उपद्रव करनेवाले हैं। ये दोनो मोटे आदमी को ऐसे जला देते हैं जैसे आग वन को जला देती है।

बहुत दुबलेपन का कारण

बहुत दुबला होना भी अच्छा नहीं। जिस तरह बहुत मोटे-पन में बुराइयाँ हैं इसी तरह बहुत दुबलेपन में भी हैं। अब दुबले पन का कारण सुनिए।

रूखी चीजों के खाने से, उपवास करने से, भूखा रहने से, अधिक जुलाब लेने से, अधिक परिश्रम करने से, शोक से, मल-मूत्र आदि के रोकने से, नींद के रोकने से, देह पर रूखी

चीजें मलने से, स्नान न करने से, रोग के पीछे दुर्बलता होने और अधिक क्रोध करने से मनुष्य बहुत दुबला हो जाता है। ऐसा दुबला कि उसके शरीर पर मांस बहुत ही कम रहता है। बस हड्डियों का पींजरा ही रह जाता है।

बहुत मोटे मनुष्य के उपद्रव

जो आदमी बहुत मोटा होता है उससे इतने काम नहीं सध सकते —

१—कसरत या और कोई मेहनत का काम।

२—भूख से अधिक भोजन न करना।

३—भूख का लगना।

४—प्यास का लगना।

५—औषध-सेवन।

६—सर्दी।

७—गर्मी।

८—मैथुन।

बहुत दुबले मनुष्य के उपद्रव

जो लोग बहुत दुबले होते हैं उनके शरीर में इतने रोग पैदा हो जाते हैं —

१—पिलही

२—खाँसी।

३—क्षयी।

४—श्वास ।

५—गोला ।

६—बवासीर ।

७—पेट की बीमारियाँ ।

८—ग्रहणी रोग, जिसमें खाना ठीक ठीक नहीं पचा करता ।

तात्पर्य यह है कि बहुत मोटा होना और बहुत दुबला होना, दोनो ही अच्छे नहीं । ये दोनो ही सदा रोगी रहते हैं । परन्तु इन दोनो मे दुबला कुछ अच्छा है । क्योंकि जब कोई बीमारी होती है तब मोटे आदमी को अधिक कष्ट होता है, दुबले को उतना नहीं होता ।

मोटापन दूर करने का उपाय

मोटे आदमी का मोटापन दूर करना हो तो ये बातें करनी चाहिएँ —

१—वातनाशक अन्न-पान का सेवन ।

२—कफ़ और मेदा को नष्ट करनेवाले भोजन ।

३—गिलोय और नागरमोथा का काढा ।

४—त्रिफला (हड, बहेडा, आमला) का काढा ।

५—मट्ठा पीना ।

६—शहद खाना ।

७—वायविडग, सोठ, जवाखार, शहद और आँवला—इन का विशेष सेवन करना ।

८—शिलाजीत और अरनी का रस मिलाकर पीना ।

९—शहद मिला हुआ पानी पीना ।

इन बातो के सिवा मोटापन दूर करने के लिए कम सोना, मैथुन, व्यायाम और चिन्ता का धीरे धीरे बढाना भी बडा हितकर है ।

दुबलेपन के दूर करने का उपाय

दुबलापन दूर करने के लिए नीचे लिखे उपायो को काम मे लाना चाहिए'—

१—खूब सोना ।

२—खुशी मनाना ।

३—आराम के साथ बैठना और सोना ।

४—मन में सन्तोष धारण करना ।

५—चिन्ता न करना ।

६—स्त्रीसङ्ग का त्याग ।

७—परिश्रम न करना ।

८—मन को सदा प्रसन्न रखना ।

९—दही, घी, दूध, ईख, साठी का चावल, उरद, गेहूँ, गुड, खाँड, शक्कर, बूरा और मिश्री का खाना ।

१०—तेल का सदा मलना ।

११—चिकना उबटन लगाना ।

१२—रोज नहाना ।

१३—चन्दनादि का शरीर पर लगाना।

१४—फूलों की माला पहनना।

१५—साफ कपड़े पहनना।

१६—पौष्टिक और भारी चीजों का खाना।

ऐसे ऐसे काम करने से मनुष्य का दुबलापन दूर हो जाता है। दो काम दुर्बलता के दूर करने के लिए बहुत अच्छे हैं। पहले तो यह कि किसी तरह की चिन्ता न करना और दूसरा खूब सोना। इन्हीं दो कामों से मनुष्य बहुत मोटा हो जाता है।

शरीरस्थ पाँच वायु

वायु ही देहधारियों की आयु है। वायु ही सब देहधारियों का बल है और वायु ही सब संसार का प्रभु वर्णन किया गया है। जिस मनुष्य के शरीर में वायु की गति ठीक ठीक रहती है उसकी आयु पूरी सौ वर्ष की होती है और उसे कभी रोग नहीं सताते।

प्राणियों के शरीर में पाँच जगह रहता हुआ वायु पाँच तरह का काम किया करता है। वही वायु ठीक तरह रह कर मनुष्य के शरीर को अच्छी तरह नीरोग रखता है। उन पाँचों के नाम हैं—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान।

प्राणवायु के स्थान और कर्म

प्राणवायु के रहने की जगह सिर, छाती, दोनों कान,

ीभ, आँख और नाक हैं। थूकना, छींकना, डकार लेना, श्वास लेना और भोजन का ग्रहण करना—इसके काम हैं।

उदानवायु के स्थान और कर्म

उदानवायु के रहने की तीन जगह हैं—नाभि, हृदय और कण्ठ। बोलना, शरीर का इधर-उधर चलना, बल और वर्ण की ाप्ति—इसके काम हैं।

समानवायु के स्थान और कर्म

समानवायु के रहने की जगह पसीने, दोष और पानी को हण करनेवाले स्रोत हैं। समानवायु जठराग्नि के पास ही इधर-धर रह कर अग्नि के बल को बढाता रहता है। बस यही सका काम है।

व्यानवायु के स्थान और कर्म

व्यानवायु मनुष्य के सारे शरीर मे रहता है। इसकी कोई कं जगह नहीं है। यह सारे शरीर में चक्कर लगाया करता है। सकी गति बडी तेज है। यह बडी जल्दी जल्दी दौरा किया रता है। चलना, फिरना, हाथ पाँव आदि अगों को सिकोडना ौर फैलाना तथा पलक मारना इत्यादि इसके काम हैं।

अपानवायु के स्थान और कर्म

अपानवायु के रहने की जगह अण्डकोश, मेढ्रस्थान, ऊरु, ाय और गुदा हैं। इनके सिवा इसका मुख्य स्थान आँव है।

आँत मे रह कर यह वायु वीर्य्य, मूत्र, विष्ठा, स्त्रियों का रजोधर्म, और गर्भ को वहाँ से अलग करना—ये काम किया करता है।

ये पाँचो वायु अपनी अपनी जगह रह कर अपना अपना काम किया करते हैं । इन्हीं के ठीक रहने से शरीर ठीक रहता है । इनके बिगड जाने से स्वास्थ्य बिगड जाता है । जब ये बिगड जाते हैं तब अपने अपने स्थान से होनेवाले रोग पैदा कर देते हैं ।

पान खाने के गुण

चरक आदि प्राचीन ग्रन्थकारों के समय मे पान खाने का रिवाज नही था । यदि उनके समय में भी पान खाने का रिवाज होता तो वे अपने ग्रन्थों मे इसकी चर्चा जरूर करते । प्राचीन शास्त्रो मे इसकी चर्चा न होने से मालूम होता है कि इसका रिवाज पीछे से हुआ है । वैद्यक के बडे नामी ग्रन्थ **भाव-प्रकाश** में इसकी चर्चा है । इससे मालूम होता है, भावमिश्र के समय मे पान खाने की प्रथा जारी थी। आज-कल तो पान खाने का बहुत ही रिवाज है। इसलिए, यह जानने की बडी जरूरत है कि पान खाने से क्या लाभ है और क्या हानि है इसी कारण भावप्रकाश आदि ग्रन्थो के मत से हम पान के गुण-अवगुण यहाँ लिखते हैं ।

पान के साधारण गुण

पान गरम, रुचिकारी, कषैला, दस्तावर, कड़ुवा, खारी और

चरपरा है। काम और रक्तपित्त* को बढ़ाता है। हलका है। कफ, मुँह की दुर्गन्धि, मैल, बादी और परिश्रम को दूर करता है। मुँह को साफ करके कान्तिमान् और सुंदर करता है। नया पान भारी है और कफ बढ़ानेवाला है। बँगला पान बहुत चरपरा और दस्तावर है, पाचक है, पित्त को बढ़ाता है, गरम और कफ नाशक है। पान जितना मुलायम होगा उतना ही गुण में कम होगा। **सुपारी** भी भारी, ठंडी, रूखी, कषैली, मुँह की सफाई करनेवाली और रुचिकारक होती है। **कत्था** कफ और पित्त को दूर करता है। और **चूना** वात और कफ को दूर करता है। कत्थे चूने के मिलने से तीनों दोष दूर हो जाते हैं। पान खाने का नियम यह है कि प्रातःकाल के पान में सुपारी, दुपहर के पान में कत्था और सन्ध्याकाल के पान में चूना जियादा रखना चाहिए।

पान के अवगुण

विरक्त (साधु, सन्यासी, विद्यार्थी, आदि) और भूखे आदमी को पान कभी न खाना चाहिए। जो लोग पान बहुत खाते हैं उनकी देह, आँखें, कान, दाँत, बाल, अग्नि, बल और वर्ण—बिगड़ जाते हैं। जिसके दाँतों में रोग हो, जो दुर्बल, नेत्ररोगी, विषरोगी, बेहोश, नशेवाला, क्षयी रोगी और रक्तपित्त

---

* रक्तपित्त उस रोग का नाम है जिसमें मुँह, नाक, कान आदि छिद्रों के द्वारा खून गिरा करता है।

रोगवाला हो उसे पान बिलकुल नहीं खाना चाहिए । बात यह है कि पान खाने से ऊपर लिखे रोग बढ़ जाते हैं ।

द्रव्य-गुण-वर्णन

जिन जिन चीजों के बर्तने का आज-कल ज्यादा काम पड़ता है उनके गुण-दोषों का जानना भी बड़ा जरूरी है । जो चीजें खाने-पीने में रोजमर्रा काम आती हैं उनके विषय में यह ज्ञान होना, कि कौन चीज गरम है, कौन ठंडी, और कौन चीज किसके लिए हितकर है, कौन किसके लिए हानिकारक—बड़ा जरूरी है । जो लोग द्रव्यों के गुण बिना जाने खाते-पीते हैं उनके शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं और जो लोग द्रव्यों के गुणों को जान कर खाते पीते हैं—जो हितकर द्रव्य को ही खाते हैं और हानिकारक को छोड़ देते हैं—वे ही नीरोग रहते हैं । हर एक मनुष्य को द्रव्यों के गुण-दोष जानने चाहिएँ । विशेष करके रसोई बनानेवाले को तो इन बातों का जानना बड़ा ही जरूरी है । इसी लिए नित्य काम में आनेवाली कुछ चीजों के गुण-दोष हम यहाँ लिखते हैं ।

धान्यवर्ग

गेहूँ

गेहूँ—गेहूँ का दूसरा नाम **सुमन** है । गेहूँ मधुर, ठंडा, वातपित्तनाशक, भारी, कफ बढ़ानेवाला, वीर्यवर्द्धक, बलकारक,

चिकना, रोचक और स्वर को साफ करनेवाला होता है। वाग्भट का मत है कि वसन्तकाल में पुराने जौ और पुराने गेहूँ खाने चाहिएँ।

जौ

जौ—रूखा, ठंढा और बादी है।

चना

चना—ठंढा, रूखा, पित्त, रक्त और कफ को दूर करनेवाला, हलका, कषैला, मल को खुश्क करनेवाला, वात को बढ़ानेवाला और ज्वर को दूर करनेवाला है। गीला करके भुना हुआ चना रोचक और बलकारक है। सूखे भुने चने बड़े हानिकारक हैं। वे बड़े रूखे हैं इसी लिए वात को और खून को बिगाड़ देते हैं। उबाले हुए चने पित्त और कफ को दूर करते हैं।

चावल

चावल कई तरह के होते हैं। उन सबमें लाल चावल, जिन्हें साठी चावल भी कहते हैं, सबसे अच्छे होते हैं। इनमें और चावलों से बल बढ़ाने की शक्ति अधिक है। मूत्र खुल के लाने के सिवा लाल चावल आवाज को साफ करते हैं, वीर्य पैदा करते हैं, प्यास बुझाते हैं, जठराग्नि बढ़ाते हैं, पुष्टि करते और ज्वर को दूर करते हैं। नेत्रों के लिए भी लाल चावल

गुणदायक हैं। बात यह कि ये तीनों दोषों को दूर करते हैं। श्वास, खाँसी और दाह को ये नष्ट करते हैं। सफेद चावल इनसे कम गुणवाले होते हैं।

मूँग

मूँग—रूखी, हलकी, ग्राही (अन्न को पेट में रोकनेवाली) कफपित्तनाशक, ठंडी, स्वादु, थोड़ी वातवर्द्धक, नेत्रों को हितकारी और ज्वर के दूर करनेवाली है। मूँग कई तरह की होती है। परन्तु सुश्रुत ने हरी मूँग सबसे अच्छी मानी है। यही मत चरक आदि ऋषियों का भी है।

उर्द

उर्द—भारी, चिकना, रोचक, वातनाशक, तृप्तिकारक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, अत्यन्त पुष्टिकारक, मूत्र, मल और स्तनों के दूध को निकालनेवाला, मेदा, पित्त और कफ को बढ़ानेवाला है। यह बवासीर, वातव्याधि, श्वास और शूल रोगों को दूर करता है। उर्द, दही और बैंगन ये तीनों चीजें कफ बढ़ानेवाली हैं।

अरहर

अरहर—कषैली, रूखी, मीठी, ठंडी, हलकी, मल को बाँधनेवाली, वातकारक वर्णकारक, पित्त, कफ और रुधिर के विकारों को शान्त करती है।

दही

साधारण रीति पर दही गरम, अग्नि को बढानेवाला, चिकना, कषैला, भारी, पकने में खट्टा, श्वास, पित्त, रुधिरविकार, सूजन और मेद रोग को बढानेवाला है।

गाय का दही

गाय का दही बडा स्वादिष्ठ होता है। खट्टा, रुचिकारक, अग्निवर्धक, हृदय को हितकारी, पुष्टिकारक और वादी को दूर करता है। सब दहियों मे गाय का दही गुणो मे उत्तम है।

भैंस का दही

चिकना, कफकर्ता, वातपित्तनाशक, और भारी है। यह रुधिर को बिगाडता है।

दही में बूरा डाल कर खाना चाहिए। यह प्यास, रक्तपित्त और दाह को शान्त करता है। गुड मिला दही वादी को नष्ट करता है। रात में दही नहीं खाना चाहिए। जो खाय तो बिना घी मीठे के न खाय। अगहन, पौष, माघ और फागुन मे दही खाना अच्छा है। शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतु (गरमी के मौसम) में दही न खाना चाहिए। बात यह है कि दही गरम होने से इन ऋतुओं में पित्त को कुपित करता है।

तक्र

तक्र को मठा या छाछ भी

भैंस का दूध

यह पित्त को नष्ट करता है, ग्राही और बलकारक है। पुष्ट है, नींद और आलस्य अधिक पैदा करता है । यह देर में पचता है।

बकरी का दूध

बकरी का दूध कषैला, मीठा, ठण्डा, ग्राही और हलका होता है। रक्तपित्त, दस्त, क्षयी, खांसी और ज्वर को दूर करता है। जगल में चरनेवाली बकरी के दूध में सब रोगों के दूर करने की शक्ति होती है। परन्तु जो बकरियां घर में ही रहती हैं उनके दूध मे वैसा गुण नहीं होता। क्योंकि जगल में तरह तरह की जडी-बूटी खाने से बकरी का दूध उत्तम हो जाता है। घर पर वे चीजें मिलती नहीं, इसलिए उसका दूध उतना गुणकारी नहीं होता।

धारोष्ण दूध

तुरन्त दुह कर जो दूध पिया जाता है वह धारोष्ण कहलाता है। यह सबसे उत्तम है। यह हलका, ठण्डा, अमृत के समान, भूख लगानेवाला और तीनो दोषो को दूर करनेवाला होता है। यदि गाय के दूध की धार ठण्डी हो, दूध निकाले देर हो गई वह दूध ठण्डा नहीं पीना चाहिए। कच्चा दूध कफ है।

दही

साधारण रीति पर दही गरम, अग्नि को बढानेवाला, चिकना, कषैला, भारी, पकने में खट्टा, श्वास, पित्त, रुधिरविकार, सूजन और मेद रोग को बढानेवाला है ।

गाय का दही

गाय का दही बडा स्वादिष्ट होता है । खट्टा, रुचिकारक, अग्निवर्धक, हृदय को हितकारी, पुष्टिकारक और वादी को दूर करता है । सब दहियों में गाय का दही गुणों में उत्तम है ।

भैंस का दही

चिकना, कफकर्ता, वातपित्तनाशक, और भारी है । यह रुधिर को बिगाडता है ।

दही में बूरा डाल कर खाना चाहिए । यह प्यास, रक्तपित्त और दाह को शान्त करता है । गुड मिला दही वादी को नष्ट करता है । रात में दही नहीं खाना चाहिए । जो खाय तो बिना घी मीठे के न खाय । अगहन, पौष, माघ और फागुन में दही खाना अच्छा है । शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतु (गरमी के मौसम) में दही न खाना चाहिए । बात यह है कि दही गरम होने से इन ऋतुओं में पित्त को कुपित करता है ।

तक्र

तक्र को मठा या छाछ भी कहते हैं । बहुत करके तक्र में

भी वही गुण हैं जो उनके दही में हैं। तक्र के द्वारा जलाये रोग फिर दुबारा नहीं पैदा होते। बात यह है कि तक्र उन रो की जड़ तक को खोद कर फेंक डालता है। पेट की सब बीमा रियों में तक्र बड़ा उपयोगी है। मठा तीन तरह का माना ग है। एक तो वह जिसमें से घी बिलकुल न निकाला गया हो मथकर यो ही छोड़ दिया गया हो। दूसरा वह जिसमें से आ घी निकाल लिया हो और आधा उसी में रहने दिया हो। तीस वह जिसमें से घी सब निकाल लिया गया हो। पहले नंबर मठा वात को शमन करता है, दूसरे नंबर का पित्त को औ तीसरे नंबर का कफ को शान्त करता है। मतलब यह कफ रोगी को पहले और दूसरे नंबर का तक्र नहीं पीना चाहिए उसके लिए वे हितकारी नहीं हैं। कफ रोगी को तो बस व मठा हितकारी है जिसमें घी बिलकुल न हो। वात रोगी पहले नंबर का जिसमें से घी बिलकुल नहीं निकाला जात हितकारी है और इसी तरह पित्त के रोगियों को आधा घ निकाला हुआ मठा हितकर है।

रोगविशेष में तक्र-सेवन

बादी के रोग में सोंठ और सेंधा नमक का चूर्ण मिला क खट्टा मठा पीना चाहिए। पित्त के रोग में बूरा मिला कर मीठ मठा पीना चाहिए और कफ के रोग में सोंठ, मिर्च, पीपल क चूर्ण डाल कर पीना चाहिए।

तक्र के सामान्य गुण

तक्र विशेष कर शीतकाल में, मन्दाग्निवाले को और बादी की बीमारीवाले तथा अरुचिवाले को पीना चाहिए। विषविकार, वमन, राल का बहना, पुराना बुखार, पांडु रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्ररोग, प्रमेह, गोला, दस्त, शूल, तिल्ली, उदरविकार, अरुचि, सफेद कोढ, प्यास और ऐसे ही और रोगो में तक्र का पीना बड़ा लाभदायक है। घाववाले रोगी को तक्र नहीं पीना चाहिए। गरमी के मौसम मे, दुर्बल मनुष्य को, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्त पित्तवाले को भी छाछ नहीं पीना चाहिए।

मक्खन

छाछ का निकाला हुआ मक्खन स्वादिष्ट, ग्राही, ठंडा, हलका, बुद्धिवर्धक, बलकारक, नेत्रों को हितकारी और रक्तपित्त को दूर करता है।

घी

घी रसायन* है, स्वादिष्ट है और बलकारक है। पित्त को शान्त करता है। नेत्रों की ज्योति बढाता है। अग्नि को प्रज्वलित करता है। गरमी और पित्त को शान्त करता है। वात को भी दबाता है, परन्तु कफ बढाता है। कान्ति, ओज, तेज, लावण्य, बुद्धि को पैदा करता है। स्वर को साफ करके स्मरण-शक्ति

---

* रसायन उसे कहते है जो सब रोगों को दूर करके बुढ़ापे

बढाता है । आयु और बल को बढाता है । ज्वर, अफारा, उन्माद, शूल, फोडा-फुसी, खाज आदि रोगों को दूर करता है। गुण मे गाय का ही घी उत्तम होता है ।

इक्षु-वर्ग

ईख या गन्ने का चूसा हुआ रस बडा गुणकारक है। पित्त और रक्तपित्त को दूर करता है । बलकारक, कफजनक, चिकना, भारी, मूत्रकारक और ठडा है । कल से निकाला हुआ रस भारी होता है, दस्त बद करता है और गर्मी करता है ।

गुड

बलकारक, भारी, वातनाशक, मूत्र लानेवाला, मेदावर्धक, कफकारक, पेट मे कीडे पैदा करनेवाला है । और पुराना गुड हलका, पथ्य, अग्निवर्धक, वातनाशक और खून को साफ करनेवाला है ।

मिसरी

ठंडी, पित्तनाशक, बलकारक, हलकी और खून के विकारों को दूर करती है ।

खाँड

कची खाँड, विशेष ठडी, मीठी, नेत्रों को हितकारी, वातपित्तनाशक, बलकारक और वमन को दूर करती है ।

चीनी या बूरा

रुचिकारक, वात पित्त-नाशक, खून साफ करनेवाली, दाह को दूर करनेवाली, वीर्यवर्धक और मूर्च्छा, वमन और ज्वर को नष्ट करती है।

लाल शक्कर

लाल शक्कर गरम, दस्तावर, कफवर्धक और बलकारक है।

शहद

रूखा, ठंडा, हलका, स्वादु, नेत्रों को हितकारी, अग्निवर्धक, स्वरशोधक, बुद्धिवर्द्धक है। कोढ़, खाँसी, रक्तपित्त, कफ, प्रमेह, मेदरोग, प्यास, वमन, श्वास, हिचकी, दस्त, मल का रुकना, दाह और घाव—इन रोगों को दूर करता है। यह जिस चीज के साथ खाया जाता है उसी के गुण में मिल जाता है।

फल-वर्ग

आम

कच्चा आम कसैला, खट्टा, रुचिकारी, वादी और पित्त को बढ़ाता है।

पका आम—मीठा, भारी, बलकारक, चिकना, सुख-दायक होता है। हृदय को हितकारक है और देह के रंग को उजला करता है, शीत और अग्नि, कफ और वीर्य को बढ़ाता है।

पेड पर पका हुआ आम भारी, वात-नाशक, मधुर और खट्टा होता है। इसी लिए कुछ कुछ पित्त को कुपित करता है। पाल में पकाया हुआ आम विशेष गुणकारी होता है।

जामन

जामन स्वादिष्ठ, कपैली, समाही, रूखी, रक्तपित्त, रुधिर और दाह को दूर करती है।

बेर

बडा बेर पुष्टिकारक, भारी, ठंडा और वीर्यजनक होता है और छोटा बेर खट्टा, कसैला, थोड़ा मीठा, चिकना, भारी, कडुवा और वात-पित्त-नाशक होता है।

दाख

मुनक्का नेत्रों को हितकारक, मधुर, ठंडा है। रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह, वातरक्त, कामला इन रोगों को दूर करती है। बलकारक, दस्तावर, बल-वर्धक है। मूर्च्छा, मूत्ररोग और गर्मी को दूर करती है।

किसमिस

रोकनेवाली है। बलकारक और दाह को दूर करती है। नासपाती के गुण भी नारंगी के ही समान हैं।

अनार

मीठा अनार दस्त को रोकता है और बल को बढाता है तथा कफ को दूर करता है। अनार वात और पित्त को दूर करता है। हलका है। रुधिर, दाह, मूर्च्छा, प्यास, ज्वर, वमन, मद, अजीर्ण और निर्बलता को दूर करता है। अरुचि को बहुत जल्द दूर करता है। खट्टा अनार मीठे अनार से गुणों में कम होता है।

अखरोट

गरम है। बादी और पित्त को दबाता है। दस्तावर है, बल-वर्धक और भारी है।

बादाम

बादाम चिकना, भारी, बादी को दूर करता है और बल बढानेवाला है।

खरबूजा

गरम है। दस्तावर है। बल-वर्धक और पित्त को दूर करता है।

तरबूज़

ठंडा, भारी और बादी को बढाता है।

केले की फली

केले की फली—मीठी, भारी, चिकनी है और पित्त, दाह, प्यास को दूर करती है। देर में पचती है। भोजन के बाद इसे नहीं खाना चाहिए।

नारियल

नारियल ठंडा, पित्त और बादी को दूर करता है। भारी, बलकारी और ग्राही है।

खिरनी

ठंडी है, दोषों को दूर करती है, मधुर और बलकारी है

गूलर

ठंडा है। पित्त, रक्त, कमजोरी, रुधिर के रोग और बाव को दूर करता है। प्रमेह और प्रदर में हितकारी है।

नींबू

खट्टा है। जीभ, कंठ और मुँह को शुद्ध करता है, अरुचि को दूर करता है। पाचक है। भूक लगाता है। उदर रोगों को दूर करता है। खट्टा होने पर भी नींबू का रस चीनी में मिला कर खाने से पित्त को शान्त करता है। दूध में नींबू का रस मिला कर पीने से पेशाब की जलन और गरमी दूर हो जाती है।

सिंघाडा

ठंडा है। पित्त को दूर करता है। भारी और ग्राही है। प्यास, दाह, मोह, भ्रम को दूर करता है। बादी करता है।

कमलगट्टा, कमल की नाल और कसेरू

इन तीनो मे सिंघाडे के समान ही गुण हैं।

व्यञ्जन-वर्ग

अब व्यञ्जन (साग-भाजी) के गुण वर्णन करते हैं।

आलू

भावप्रकाश मे लिखा है कि आलू ठंडा होता है। भारी, मधुर, मलमूत्र को लानेवाला, रूखा, रक्तपित्त को नाश करता है। कफ और बादी करता है। बलवर्धक और कुछ अग्नि को भी बढानेवाला है।

घुइयाँ (अरवी)

बलकारी, चिकनी, भारी और देर में पचनेवाली है।

मूली

मूली दो तरह की होती है। छोटी और बडी। छोटी मूली चरपरी, गरम, रोचक, हलकी, पाचक, त्रिदोष-नाशक और स्वर को शुद्ध करनेवाली है। ज्वर, श्वास, नाक के रोग, कंठरोग और नेत्रों के रोगो को दूर करती है। बडी मूली रूखी,

गरम, भारी और तीनो दोषों को बिगाडनेवाली है। यदि इसे तेल में बनाया जाय तो इसके दुर्गुण दूर हो जाते हैं।

गाजर

मीठी, तीक्ष्ण, कड़वी, गरम, अग्निवर्धक, हलकी और सग्राही है। बवासीर, सग्रहणी और वात-कफ को दूर करती है।

पेठा

ठडा है। मल को भेदन करता है। पित्त और रुधिरविकार को दूर करता है।

ज़मीकंद

गरम है। अग्निवर्धक है। बादी, बवासीर को दूर करता है। कफ को दूर करता है और हलका है।

बैंगन

यह बादी और कफ को दूर करता है। पित्त को बहुत नहीं बढाता। रोचक, गरम और बलकारक है। ज्वर और खाँसी को दूर करता है।

सेम की फली

भारी, कफ बढानेवाली और ठडी होती है।

तोरई

हलकी, ठडी, दस्तावर और कफ को बढानेवाली है।

परवल

यह निर्दोष है। स्वादु है। ज्वर, खाँसी को दूर करता है। चरपरा है। दस्तावर है। कुछ गरम है।

करैला

करेला ठंडा, दस्तावर, हलका, कड़ुवा, वादी को न बढ़ानेवाला, ज्वर, पित्त, कफ, रुधिर-विकार, पाण्डु और प्रमेह को दूर करता है।

ककड़ी

ठंडी है। पित्त को दूर करती है। दस्तावर है।

खीरा

कच्चा खीरा ठण्डा और पका गरम है। यह मूत्र साफ लाता है। देर में पचता है।

चने का साग

देर में पचता है। वादी करता है। मल को बाँधता है।

बथुआ

यह बहुत गरम और दस्तावर है। अग्निवर्धक है।

मेथी

ग्राही, गरम, वादी और कफ को दूर करती है।

सरसों का साग

तीनों दोषों को बिगाड़ता है। भारी है। गरम है। दस्त को रोकता है।

पालक

ठंडा, दस्तावर, हलका और पित्त को हरनेवाला है।

चौलाई

हलकी, ठंडी, रूखी, पित्त-कफनाशक, रुधिर-दोषनाशक मल-मूत्र को निकालनेवाली, रोचक और अग्नि-वर्धक है

परवल के पत्ते

परवल के पत्तों का साग हलका, अग्निदीपन, गरम और ज्वर, खाँसी को दूर करनेवाला है।

तेल-वर्ग

तिल का तेल

कफ और बादी के रोगों को दूर करता है। प्रमेह, फोड़े, फुंसी, बवासीर को दूर करता है। खाज और कीड़ों को दूर करता है। रस में मीठा है। भारी, भेदी, गरम, अग्निसंदीपन, दृष्टि को हितकर और रक्त-पित्त को बढ़ानेवाला है। शरीर पर मलने से त्वचा के रोग दूर हो जाते हैं और त्वचा नरम रहती

है । केशों में लगाने से केशों में नरमाई, चिकनाई और काला-पन आ जाता है ।

सरसों का तेल

सरसों का तेल—हलका, कफ, बवासीर, बादी, खाज और कीड़ों को दूर करता है । गरम है, कड़ुवा है और रक्त-पित्त को करता है । अग्नि को बढ़ाता है ।

अलसी का तेल

चिकना, बादी को दूर करता है । कफ, रुधिर-विकार और पित्त को बढ़ाता है । गरम है, नेत्रों को हितकारी नहीं है ।

अंडी का तेल

गरम, दस्तावर, मधुर और आमवात का नाश करने-वाला है ।



मसाला-वर्ग

नमक

नमक कई तरह के होते हैं । सबमें सेंधा नमक, जिसे लाहौरी नमक और सफेद नमक भी कहते हैं, अच्छा होता है । औरों से इसमें नया गुण यह होता है कि और तो सब

गरम है परन्तु यह उतना गरम नहीं किन्तु कुछ ठंडा है। और नमक सब नेत्रों को और वीर्य्य को नष्ट करते हैं पर यह नमक नेत्रों को बडा हितकर है। इसलिए सेंधा नमक ही खाना चाहिए। यह अग्नि को बढाता है। पाचन, हलक चिकना, रोचक, ठण्डा, बलकारक, नेत्रो को हितकारी औ तीनों दोषों को दूर करता है।

हल्दी

हल्दी भी कई तरह की होती है। साधारण हल्दी, दारु हल्दी, कपूर-हल्दी और वन-हल्दी। साधारण हल्दी ही खा पीने के काम मे आती है। इसलिए हम उसी के गुणावगुण यहाँ लिखते हैं।

हल्दी—कडुवी, तीत, रूखी और गरम है। कफ, पित्त, त्वचा के दोष, प्रमेह, खून के विकार, सूजन, पाण्डुरोग, और फोडे फुसी को दूर करती है। हल्दी अधिक खाने से कुछ विकार हुआ हो तो कपूर वा नेत्रबाला देने से वह विकार दब जाता है।

मिर्च

मिर्च का रस चरपरा होता है। गुण तीक्ष्ण है। अग्नि के बढानेवाली और कफ को दूर करनेवाली है। उष्णवीर्य्य होने से मिर्च पित्त को बढाती है। शूल और कृमिरोग को दूर करती है। काली मिर्चो को कच्ची खाँड में मिलाकर खाने से

नेत्रों के सब रोग नष्ट हो जाते हैं । काली मिर्चों को जौ के साथ पीस कर गोमूत्र में मिला कर लेप करने से खाज दूर हो जाती है । इसके अवगुण को मिश्री, घी, दूध और शहद दूर करते हैं ।

ज़ीरा

जीरा दो तरह का होता है । काला और सफेद । कोई कोई आचार्य्य कलोंजी को भी जीरा का ही तीसरा भेद मानते हैं । इसके मिलाने से तीन तरह का होता है ।

जीरा—रूखा, कटु (चरपरा), गरम, अग्निवर्धक, हलका, ग्राही, पित्त-कर्त्ता, स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाला, गर्भाशय और मूत्राशय को शुद्ध करनेवाला, ज्वरनाशक, पाचक, बलकारक, रुचिकारी और कफनाशक है । नेत्रों को हितकारी है ।

धनियाँ

यह तीनो दोषों को दूर करता है । ठण्डा है । मूत्र को साफ करता है । प्यास और दाह को दूर करता है ।

मेथी

मेथी—गरम है । बादी को दूर करती है । अग्निवर्धक है ।

अजवायन

गरम है । अग्नि को बढ़ाती है । पाचन है । कफ, अफारा, तिल्ली और पेट के कीड़ों को दूर करती है ।

हींग

हींग—गरम, पाचन, रुचिकारी, तेज, पित्तवर्धक, बलकारक, होता है। शूल, गोला, अफारा को दूर करता है। हींग को सिरके के साथ मिला कर लेप करने से बाल उखड़ना बन्द हो जाता है।

लौंग

इसमें दो रस होते हैं—कड़ुवा और चरपरा। यह हलकी, नेत्रों को हितकारी, ठंडी, दीपन, पाचन, रुचिकारी है। कफ, पित्त, रुधिर के विकार, प्यास, वमन, अफारा, शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षयी रोग को दूर करती है। लौंग डाल कर औटाया हुआ पानी ज्वर की प्यास को शान्त करता है।

तेजपात

यह कफ, वादी, बवासीर, उबकी, अरुचि और जुकाम को दूर करता है। भावप्रकाश में लिखा है कि दालचीनी के वृक्ष के पत्तों का ही नाम तेजपात है।

दालचीनी

दालचीनी—सुगन्धित, मीठी, कड़ुवी, बलकारक और शरीर के रङ्ग को साफ करनेवाली है। वात, पित्त, मुँह का सूखना और प्यास को दूर करती है। दालचीनी के जियादा

खा जाने पर जो विकार हो तो उसको दबाने के लिए मिश्री और खाँड खानी चाहिए ।

बड़ी इलायची

रस और पाक में चरपरी, अग्निकारक, हलकी, रूखी और गरम है । कफ, रक्त, पित्त, खुजली, प्यास, वमन और मुख-रोगों को दूर करती है ।

छोटी इलायची

यह ठंडी, चरपरी, हलकी और वातनाशक होती है । कफ, खाँसी, श्वास, बवासीर, मूत्र करते समय दर्द का होना आदि रोगों को दूर करती है ।

जावित्री

हलकी, स्वादु, चरपरी, गरम, रुचिकारक, मुँह को साफ करनेवाली और दुर्गन्ध को नष्ट करनेवाली है । कफ, श्वास, खाँसी, वमन, प्यास और कीड़ों को दूर करती है ।

अदरक और सोंठ

अदरक और सोंठ में बराबर गुण हैं । केवल एक गुण सोंठ से अदरक में विशेष है । सोंठ पेट के मल को भेदन तो करती है पर उसे निकाल नहीं सकती किन्तु अदरक भेदन भी करता है और मल को निकालता भी है । ये दोनों रुचिकारक, आम-वातनाशक, पाचक, कफ, वात और मल की रुकावट को दूर

करते हैं। बलकारक हैं। वमन, श्वास, शूल, खाँसी, पेट के विकार और वादी के रोगों को दूर करते हैं। सोंठ न मिले तो उसकी जगह अदरक काम में लाना चाहिए। और अदरक न मिले तो सोंठ से काम चला लेना चाहिए। कुष्ठ, पाण्डु, मूत्ररोग, रक्त, पित्त, घाव, ज्वर, दाह—इन रोगों में और गरमी के मौसम में अदरक नहीं खाना चाहिए।

पीपल

अग्नि को बढ़ाती है। बल करती है। हलकी है और दस्तावर भी है। श्वास, खाँसी, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, वायु-गोला, बवासीर, तिल्ली, शूल और आमवात को दूर करती है।

इमली

खट्टी, भारी, वात-नाशक, पित्तकारक, खून के दोष को दूर करती है। अग्निवर्धक, रूखी, दस्तावर, गरम, वात-कफ को दूर करती है। बहुत खाने से फेफड़े को नुक़सान पहुँचाती है। इमली न मिले तो आलूबुखारा काम में लाना चाहिए।

अमचूर

खट्टा, स्वादिष्ट, कसैला, दस्तावर है और कफ-वात को दूर करता है।

सत्तू-वर्ग

जौ का सत्तू ठंडा, अग्नि बढ़ानेवाला, हलका, दस्तावर,

कफ-पित्त-नाशक, रूखा है। इसका पीना बलदायक, वृष्य, भेदक, तृप्तिकर्त्ता, मधुर, रुचिकारी तथा अन्त मे बल-नाशक है। कफ, पित्त, परिश्रम, भूक, प्यास, अडवृद्धि और नेत्र रागों को हितकारी है।

चनो में चौथाई जौ मिला कर जो सत्तू बनाये जाते हैं उन्हे बूरा डाल कर ही खाना चाहिए।

चावलो का सत्तू—अग्निवर्धक, हलका, ठंडा, मीठा, ग्राही, रुचिकर्ता, पथ्य, बल और वीर्य को बढाता है।

सत्तू खाने का नियम यह है कि भोजन करके सत्तू न खाना चाहिए और रात्रि मे भी न खाना चाहिए। बहुत न खाना चाहिए तथा एक पानी मे दूसरी तरह का पानी डालकर भी नहीं खाना चाहिए। दूध के साथ भी नहीं खाना चाहिए। और गरम करके खाना भी मना है।

जल-वर्ग

पानी बडा गुणकारी है। पानी प्राणियो का जीवन है। चेतनो का ही नहीं जड जीवो का भी जीवन है। पानी के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। पहले किसी प्रकरण में हम पानी के विषय में कुछ लिख चुके हैं। यहाँ पर कुछ विशेष लिखते हैं।

पानी—ठंडा, नित्य हितकारी, हलका, निर्मल, रसों का कारण और प्राणियो को अमृत के तुल्य है। श्रम, ग्लानि, मूर्छा,

प्यास, वमन, मल का कडा होकर रुक जाना, इन रागों को दूर करता है। बलकारी, निद्रानाशक, इन्द्रियों को तृप्त करनेवाला, हृदय को हितकारी और अजीर्णनाशक है।

धाराजल

वर्षाकाल में पृथ्वी से ऊपर ही ऊपर किसी पात्र से लिया हुआ जल धाराजल कहलाता है। यह त्रिदोषनाशक, हलका, ठंडा, रसायन, बलकारी, तृप्तिदायक, प्रसन्नकर्ता, जीवन, पाचन, बुद्धिवर्धक, मूर्च्छा, दाह, श्रम और प्यास को दूर करता है। परन्तु ये गुण शरत्काल में होते हैं। वर्षा ऋतु मे कम होते हैं।

वर्षा का जल भी दो तरह का होता है। एक मीठा, दूसरा खारी। चरक मे इसकी पहचान इस तरह लिखी है —

सोने, चाँदी या मिट्टी के बर्तन मे चावल रख कर इसमे पानी भर देना चाहिए। पानी मे पडे हुए चावल यदि अपने असली रंग मे ही रहें, उनमें किसी तरह का विकार नहीं आवे तो समझना चाहिए कि पानी मीठा है। और जो चावलों का रंग बिगड़ जाय, वे सड जायँ तो खारी पानी समझना चाहिए।

मीठा पानी तीनों दोषों को हितकारी है और खारी पानी वीर्य, दृष्टि, बल का नष्ट करनेवाला है। आश्विन के महीने में वर्षा का जल विशेष गुणकारी होता है।

अकाल मे वर्षा का जल इकट्ठा करके नहीं पीना चाहिए।

ओलों का जल

ओलो का पानी रूखा, भारी, बँधा हुआ, ठंडा, गाढा, पित्त नाशक, कफ और वादी को करनेवाला है।

ओस का जल

ओस का पानी वृक्षों के लिए हितकारी होता है, मनुष्यो के लिए नहीं। मनुष्यो के लिए यह बडा हानिकारक है।

हेम-जल

बर्फवाले पहाडा से जो बर्फ गल कर पानी निकलता है उसे हेम-जल कहते हैं। यह ठंढा, रूखा और वात को दूषित करता है।

पृथ्वी का पानी तीन तरह का होता है। जांगल, अनूप और साधारण। इनका लक्षण भावप्रकाश में इस तरह लिखा है —

जांगल जल

जिस देश में थोडा जल और थोडे वृक्ष हो, जहाँ के मनुष्य पित्त और रुधिर के विकारवाले हो उस देश को जांगल देश कहते हैं। वहाँ का पानी रूखा, नमकीन, हलका, पित्तनाशक, जठराग्निवर्धक, कफनाशक, पथ्य और बहुत से विकारो को दूर करता है।

वर्षा का जल

वर्षा का पानी जो धरती पर इकट्ठा हो जाता है वह एक दिन तक किसी काम का नहीं होता। हाँ जो तीन रात बीत जायँ और धरती का पानी निर्मल हो जाय तो वह गुणकारी और हितकारी होता है।

ऋतु-भेद से जल के गुण

सुश्रुत में लिखा है कि पौष के महीने मे सरोवर झील का पानी, माघ मे तलावों का, फाल्गुन मे कुए का, चैत्र में चोए का, वैशाख मे झरने का, ज्येष्ठ में जो पृथ्वी को फोड कर निकला हो वह, आषाढ में कुए का, श्रावण मे आकाश का, भादो में कुए का, कुआर में पहाडों पर, गड्ढों मे और छाया में जो पानी भरा हो वह, और कार्तिक तथा अगहन मे सब तरह के जल हितकारी होते हैं।

जलपान-विधि

बहुत पानी पीने से खाया हुआ भोजन अच्छी तरह नहीं पचता, और बिलकुल न पीने से भी यही बिगाड होता है। इसलिए मनुष्य को उचित है कि अपनी अग्नि के बढाने के लिए बार बार ठहर ठहर कर थोडा थोडा पानी पीना चाहिए।

ठंडे पानी के योग्य मनुष्य

सब लोगों की प्रकृति समान नहीं होती। इसलिए यह

जरूरी नहीं कि सबको ठण्डा ही पानी हितकर हो। बहुत से ऐसे आदमी हैं जिन्हें ठण्डा पानी फायदा करता है और कितने ही ऐसे भी हैं जिन्हें ठण्डा पानी हानि करता है। अब हम उन मनुष्यों को बतलाते हैं जिन्हें ठण्डा पानी लाभदायक होता है और जिन्हे ठण्डा पानी पीना चाहिए। वे ये हैं—

मूर्च्छा रोगी, पित्तवाला, गरमी की बीमारीवाला, विषरोगी, रुधिर का रोगी, नशे का रोगी, परिश्रम से थका हुआ, भ्रम-रोगी वमन-रोगी और जिसकी नाक, मुँह या कानो से रुधिर निकलता हो, इनको ठण्डा ही पानी पीना चाहिए।

ठण्डे पानी के अयोग्य मनुष्य

इन मनुष्यों को ठण्डा पानी हानि करता है। इसलिए इन्हें ठण्डा पानी नहीं पीना चाहिए।

जिसकी पसलियों में दर्द हो, वादी का रोगी, गलगडवाला, अफारावाला, जिसका मल रुका हो, जो हाल ही में जुलाब ले चुका हो, नये ज्वरवाला, अरुचि रोगी, संग्रहणी, गोला, श्वास, खाँसी और हिचकी रोगवाला।

थोड़ा पानी पीने योग्य मनुष्य

जिनको अरुचि का रोग हो, मन्दाग्नि हो, सूजन हो, मुँह से राल बहती हो, उदर रोग हो, कोढ़ हो, नेत्रों में विकार हो, ज्वर हो, और फोड़े फुसियाँ हों, उन्हे थोड़ा पानी

पीना चाहिए। क्योंकि अधिक पानी पीने से इनके रोग ब
जाते हैं।

जल पीने की आवश्यकता

जल से ही प्राणियों का जीवन स्थित रहता है। प्यास के कभी रोकना नहीं चाहिए। प्यास के रोकने से जो रोग पैद हो जाते हैं वे सब लिखे जा चुके हैं। इसलिए चाहे जैसा रो हो पर पानी बिना थोडी देर भी नहीं रहना चाहिए। बहुत मूर्ख रोगी को पानी देने को मना कर देते हैं इस कारण रोग प्यास के मारे तडप कर मर जाता है। प्यास के रोगी को थोड़ थोडा पानी जरूर देना चाहिए। बिलकुल न देना बहुत बुरा है प्यास मे पानी न मिले तो अग्नि और वायु शरीर के भीत जितना रस होता है उस सबको सुखा कर रोगी को मार डाल हैं इसलिए प्यास में पानी जरूर पीना चाहिए।

जल के शुद्ध करने का उपाय

बिगडा पानी पीना अच्छा नहीं। उससे बहुत से रोग पैद हो जाते हैं। इसलिए बिगडे हुए पानी मे न नहाय और न उसे पीने के काम में लावे। जहाँ पर साफ पानी मिलेही नहीं वहा उसी पानी को साफ करके काम में लावे। पानी के साफ करने की युक्तियां इस प्रकार हैं —

१—औटा कर छानने से भी पानी साफ हो जाता है।

२—सोने, चाँदी, लोहे, पत्थर और बालू को गरम करके पानी मे बुझाने से भी पानी साफ हो जाता है।

३—जिस पानी में यह सन्देह हो कि इसमे कीडे हैं तो उसे खूब औटा कर गाढे कपडे में छान लेना चाहिए। ऐसा करने से उसके कीडे दूर हो जाते हैं।

पानी साफ़ करने की आज-कल की तरकीब

एक तिकटी तीन पाये की और तीन खन की बनवानी चाहिए। फिर चार घडे लेवे। एक सबसे ऊपर रक्खे, उसमे पक्के कोयले भर देवे। उसके नीचे बालू रेत से भरा घडा रक्खे। उसके नीचे कँकरीली जमीन मे से निकली हुई ककरी से भर कर घडा रक्खे। और तीनो की पेंदियों में बारीक बारीक छेद कर देना चाहिए। ऐसा कर चुकने पर सबसे ऊपर के घडे मे पानी भर देना चाहिए। उन तीनो घडों के नीचे साफ खाली घडा सफेद कपडे से उसका मुँह बाँध कर रख देवे तो तीना घडों मे से टपक टपक कर पानी सबसे नीचे के घडे में इकट्ठा हो जायगा। ऐसा करने से पानी मे चिकनाई आदि जो कुछ बिगाड होगा उसे कोयले, बालू और ककर आदि सब सोख लेते हैं।

पिये हुए पानी के पचने का समय

कच्चा पानी जो पिया जाता है वह दो पहर में पचता है और

औटा कर ठण्डा करके जो पिया जाता है वह एक ही पहर में पच जाता और औटा कर कुछ कुछ गरम ही जो पिया जाता है वह चार ही घडी मे पच जाता है।

इति
